कुत्ते की दुम

डॉ० र० श० केलकर

भारतीय
ज्ञानपीठ
प्रकाशन

कुत्ते
की
दुम

डॉ० र० श० केलकर

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक—२४७
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 247

KUTTE KEE DUM

(Satirical Personal Essays)

Dr. R. S. KELKAR

Bharatiya Jnanpith Publication

First Edition 1967

Price Rs. ~~8.00~~

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय
९. अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी—५
विक्रय-केन्द्र
३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण १९६७
मूल्य ~~८.००~~

सन्मति मुद्रणालय,
वाराणसी—५

■ ■

अपने उन मित्रों को –
जिनसे मुझे इन शब्द-चित्रों
को लिखने की
प्रेरणा मिली

भूमिकाकी भूमिका

भूमिका लिखनेका यह जो आजकल फ़ैशन-सा चल चल पड़ा है उसके बारेमें नये सिरेसे विचार करनेके लिए मैं उस दिन मजबूर हुआ जिस दिन अपने व्यंग्य लेखोंका संकलन छपवानेका भूत मेरे हितैषी मित्र कल्पना-विभूषणने अपने अनेक अनोखे विचारोंके साथ गरम आलूकी टिकिया खाते-खाते मुझपर सवार कर दिया और इस भूतने मुझे ऐसा पकड़ा कि सामने आलूकी टिकियासे निकलनेवाली भाफमें मुझे अपने संकलनकी बिकी-अनबिकी सभी प्रतियाँ एक साथ दिखाई देने लगीं। टिकियासे ढुलकी हरी चटनीमें मैंने यह भी देखा कि मैं मुँहसे थूक उड़ाता अपने संकलनके बारेमें संवाददाताओंके सम्मुख सिद्धहस्त लेखकके अन्दाज़से वक्तव्य दे रहा हूँ। क्योंकि अपने वर्सेटाइल लेखक-मित्रकी दृष्टिमें सैकड़ों पन्ने हिन्दीकी प्रमुख पत्रिकाओंमें लिख डालनेके बाद भी मैं हिन्दीका लेखक तबतक नहीं माना जा सकता था जबतक मेरी अपनी एक पुस्तक न प्रकाशित हुई हो। दूसरे शब्दोंमें वे यह मानते थे कि हिन्दीमें एक पुस्तक लिखनेसे व्यक्ति लेखक बन जाता है। फिर वह पुस्तक अपने नाम दूसरेकी होनेसे भी काम चल जाता है। संकलनका विचार मनमें दृढ़ होते ही भूमिकाकी आवश्यकता और अधिक प्रतीत होने लगी। क्योंकि आजके युगमें पुस्तकके लिए भूमिका उतनी ही आवश्यक बन गयी है जितनी 'सोशल-लाइफ़' में कामयाबीके लिए खूबसूरत बीवी। मैं नहीं समझता कि पुस्तकके लिए भूमिका ऐसी ज़रूरी क्यों बन बैठी है। लेखक

जो कुछ लिखता है वह पाठकके सामने होता है और वह उसका साहित्यिक मूल्य स्वयं निर्धारित कर सकता है फिर यह विज्ञापन क्यों ? लेखकका यदि कोई विशिष्ट दृष्टिकोण रहा है तो उसके स्पष्टीकरणकी आवश्यकता क्यों होती है ? यदि भूमिका लिखने या लिखवानेका हेतु अपने लेखनका विज्ञापन करना है तो मैं उसे लेखनकी कमज़ोरी समझता हूँ। पर साहित्यिक संसार मेरे समझानेसे तो समझेगा नहीं। यदि समझता होता तो मेरे प्रयोगवादी मित्र पुस्तकका पहला पृष्ठ तीन चिह्न लगाकर ही क्यों छोड़ देते, जैसे उन तीन प्रश्न-चिह्नोंमें उनकी अभिव्यक्तिके तीनों 'जैण्डर' समाविष्ट हों।

भूमिकाकी परम्पराके निर्वाहके लिए ज़रूरी हो गया है कि मैं उसके उद्गम, विकास और स्वरूपपर गहराईसे विचार करता और पाठकोंको अपने पाण्डित्यसे आतंकित करता। हिन्दी कोशमें 'भूमिका' शब्दका अर्थ यों दिया गया है – "किसी ग्रन्थके आरम्भका वह वक्तव्य जिससे उस ग्रन्थकी ज्ञातव्य बातोंका पता चले।" इससे पता चलता है कि भूमिका भूमि-सी ही प्राचीन है। अतएव आदिकविने अवश्य अपने प्रथम छन्दकी रचनाके बाद अपने भावको खोलकर दिखानेके लिए एक अच्छी-खासी भूमिका बाँधी होगी, और यदि न बाँधी होगी तो उसे यक़ीन होगा कि उसके प्रथम छन्दमें कोई भी ज्ञातव्य बात नहीं है वरन् वह केवल अनुभूति-का विषय है। आदिकविसे लेकर ईलियटी सम्प्रदायके वायवी कवियों तक पहुँचते-पहुँचते भूमिकाका काफ़ी कायापलट हुआ है। अपनी बात प्राक्क-थन, आमुख, परिचय, प्रस्तावना, दो शब्द आदि भूमिकाके ही अनेक रूप हैं जिनके द्वारा अज्ञातव्य बातोंको ज्ञातव्य बनानेकी सफल-असफल चेष्टा की जाती है और 'दो शब्द' बीस-पच्चीस पृष्ठोंको आत्मसात् करनेके बाद भी 'दो शब्द' ही बने रहते हैं!

हाँ, तो अनेक पुस्तकोंकी भूमिकाएँ पढ़ जानेके बाद मैं सोचता रहा कि भूमिका मैं लिखूँ या किसी आचार्य, डॉक्टर या साहित्य-शास्त्रीजीसे लिखवाऊँ। सच देखा जाये तो मेरे संकलनके लिए भूमिका अत्यन्त

आवश्यक थी क्योंकि संकलनके सभी लेख व्यंग्य-प्रधान विनोदी लेख थे और इसलिए वे सब हास्यके अन्तर्गत आनेके कारण मेरे उदासो लेखक-मित्र और उदीयमान आलोचक डॉ० अनोखेलाल शर्मा उन्हें रचनात्मक साहित्य नहीं मानते थे। उनका कहना था कि उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता और दुरूह साहित्यिक निबन्ध ही 'रचनात्मक' साहित्यके अन्तर्गत आते हैं और इसीलिए 'फ़िल्मी गानोंमें शृंगारकी परम्पराका निर्वाह तथा जयदेवका फ़िल्मी गानोंपर प्रभाव' विषयपर अपने प्रबन्धको वे रचनात्मक साहित्यका अमूल्य ग्रन्थ मानते थे। जो हो, मुझे उससे बहस नहीं। मैं तो भूमिका-द्वारा अपने आलोचकोंका ध्यान बचपनकी उन गुदगुदानेवाली चुटकियों या चुभनेवाले तानोंकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ जो उनका कैरियर बनानेके लिए मुख्य रूपसे उत्तरदायी रहे हैं। यदि अपनी ही बात कहूँ तो मैं हरगिज़ मैट्रिक पास न कर सकता यदि खोमचा लगानेसे मुझे सख्त नफ़रत न होती। मुझे दिन-भर पतंगबाज़ी करते हुए देखकर एक बार मेरे पिताजीने हताश होकर कहा था – "तू तो खोमचा लगायेगा।" यह दूसरी बात है कि आज खोमचा लगाना भी आदरणीय समझा जाने लगा है – जैसे सिनेमामें काम करना। परन्तु उस समय इस छोटे-से वाक्यने तो मेरे जीवनकी दिशा ही बदल डाली थी।

तो जनाब, भूमिका लिखवानेके चक्करमें मैंने अनेक साहित्यिक देवताओंकी उपासना की, अनेक दिग्गजोंकी स्तुति की और अनेक महारथियोंकी 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' के रूपमें अनेक छोटी-बड़ी सेवाएँ कीं तब कहीं एक स्वयम्भू कनफटे महात्मा प्रसन्न हुए और उन्होंने पाण्डुलिपि अपने पास रख ली। एक वर्ष उन्हें मुझे यह बतानेके लिए लगा कि मेरे लेखोंमें पत्नीवाद काफ़ी आ गया है। उस वादको यदि मैं निकाल दूँ तो ठीक रहेगा क्योंकि पत्नीवाद काफ़ी पुराना हो गया है। मैंने कहा – ऐसा गज़ब न कीजिए, पत्नीसे ही मुझे प्रेरणा मिलती है और पत्नीवाद या पत्नी पुरानी लगनेसे हम उसे छोड़ थोड़े ही देते हैं। परिधान बदलते

रहते हैं पर पत्नी नहीं बदलती। और आप बदलनेकी सोचें भी तो हिन्दू कोड बिल आपसे बदला लेगा। पर वे नहीं माने। उनका दूसरा आक्षेप यह था कि मेरे लेखोंमें बहुत-सी बातें आ जाती हैं। अच्छा होता यदि मैं एक ही बातको आरम्भसे अन्त तक कहता। मैंने कहा, क्या गजब कर रहे हैं! आप जब 'एसोसिएशन ऑव थाट' का साहित्यमें कोई स्थान ही नहीं मानते तो फिर भला मॉण्टनी कैसे ब्रेक हो। वही बात बार-बार कहनेसे ही तो पत्नीसे मेरी खटक जाया करती है। वे अपनी बातपर अड़े रहे। परिणाम यह हुआ कि साल-भरके बाद पाण्डुलिपि जैसी गयी थी वैसी लौट आयी। लाल स्याहीके निशानोंसे पता लगा कि उन्होंने संकलनका केवल एक ही लेख देखा था। मुझे बादमें पता लगा कि उन दिनों वे अपनी पत्नीका उपन्यास छपानेके प्रयत्नमें लगे हुए थे। एक दूसरे देवताके द्वारपर गया तो देवता सो रहे थे। जब भी गया वह सोते ही मिले। अन्तमें एक साहब राजी हो गये और उन्होंने भूमिका लिख डाली पर उस भूमिकामें उन्होंने अपनी आत्मस्तुति की थी और इतनी घटनाओंका उल्लेख किया था कि मुझे लाल क़िलेके सामने पटरीपर बैठे हुए फ़ोटोग्राफ़रके परदेकी याद आ गयी जिसके सामने कुरसीपर बैठाकर वह देहातियोंकी तसवीरें खींचा करता है। इस परदेपर आपको सब-कुछ मिलेगा, हवाई जहाज़, रेलगाड़ी, हवेली, उद्यान, मोटर, फ़व्वारे, तालाब, एक कोनेमें नेताओंकी तसवीरें, दूसरी ओर देवताओंकी, मतलब यह कि फ़ोटोग्राफ़र महाशयकी कल्पना जहाँतक दौड़ सकती है और देहाती जिन-जिन चीज़ोंको पसन्द कर सकता है वह सब उस परदेपर मौजूद रहती हैं। इस जटिल पार्श्वभूमिमें जैसे देहातीका अस्तित्व खो जाता है उसी प्रकार उस भूमिकामें मेरा अस्तित्व खो गया था। मुझे बादमें पता लगा कि वे व्यावसायिक भूमिका-लेखक थे। तबसे मैंने भूमिका लिखवानेका विचार छोड़ दिया है और आज अपना यह संकलन मैं बिना भूमिकाके ही आपके सामने पेश कर रहा हूँ। इसे भूलसे मेरी भूमिका न समझ बैठिए।

■

औरोंकी दृष्टिमें—मैं

आज मैं वह सत्कर्म करने जा रहा हूँ जो मेरे मित्र और आन्तर्भारतीय सर्वतोमुखी प्रतिभावान् जन्मजात पण्डित-लेखकके कथनानुसार एक ऐसा विकट कार्य है जिसे संसारके चुने हुए महान् व्यक्ति भी नहीं कर पाये। और वह सत्कर्म है दूसरोंकी आँखोंसे अपने-आपको देखना। अतः उन्होंने नाक लम्बी करके मुझसे कहा था कि अच्छा होगा यदि औरोंकी दृष्टिसे अपनेको देखनेकी बजाय मैं अपनी ही दृष्टिसे अपनेको देखूँ पर मुझे उनकी बात इसलिए नहीं जँची कि जिस दृष्टिसे मैं औरोंको देखता हूँ उस दृष्टिके कोणोंमें मेरा अपना व्यक्तित्व सर्वत्र ही विद्यमान रहता है। अतः अपनी ही दृष्टिसे अपनेको देखना केवल पुनरावृत्ति ही नहीं होगी वरन् मेरा जो यथार्थ रूप सहज ही पाठकोंके सामने उतरता रहा है उसे सँवारकर प्रस्तुत कर बैठनेकी भी सम्भावना हो सकती है। ऐसी दशामें भी दूसरेकी ही आँखें मुझे देखेंगी और अन्तमें मुझे उन्हींकी आँखोंसे अपने-आपको देखना लाजमी हो जायेगा। मेरे इस हितैषी मित्रका यह भी कहना है कि ऐसे प्रयासमें अनेक मनोवैज्ञानिक कठिनाइयाँ हैं और एक ऐसे साहसकी आवश्यकता है जो केवल विदेशमें पैदा होता है और चूँकि विदेश-यात्रासे मैं सम्पन्न नहीं हूँ, मेरे पास उसका इम्पोर्ट-लाइसेन्स नहीं है अतः इस दिशामें मेरा कोई भी प्रयास सचमुच एक साहसका कार्य होगा।

जहाँतक मनोवैज्ञानिक कठिनाइयोंका सम्बन्ध है मैं समझता हूँ कि ये कठिनाइयाँ भी दूसरोंकी ही दृष्टिसे देखी जा सकती हैं। यदि अपनी

ही दृष्टिसे उन्हें देखना सम्भव होता तो आज लेखक-वर्ग, जो अन्य वर्गोंसे समुन्नत समझा जाता है, एक अच्छा-खासा 'जू' न बन गया होता !

यहाँ यह भी बता दूँ कि जनता मुझे लेखक नहीं समझती, क्योंकि उसकी दृष्टिमें लेखकके कोई भी आवश्यक गुण मुझमें विद्यमान नहीं हैं। क्योंकि न तो मैं किसी दिग्गज साहित्यकारका परिशिष्ट हूँ, न किसी गुटका महारथी, न मेरे नाम कुछ अपनी कुछ दूसरोंकी किताबें छपी हैं और न ही मेरा कोई शिष्य-सम्प्रदाय है। मैं तो केवल हलकी-फुलकी चीज़ें लिखा करता हूँ और इसलिए न तो स्वयम्भू लेखकोंकी पैनी दृष्टि मुझपर पड़ी है और न मुझे लेकर उनकी चोंचें लड़ी हैं। क्योंकि स्वयम्भू होनेके नाते पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना वे अपनी तौहीन समझते हैं। वे केवल उन ग्रन्थोंपर सरसरी दृष्टि डालना पसन्द करते हैं जो अन्य महारथियोंके नाम छपी हों। तात्पर्य यह कि मेरे विषयमें ऐसे महारथियोंकी अच्छी या बुरी कोई भी दृष्टि नहीं है यह समझकर ही मैं उन आँखोंसे ही आँख मिलाऊँगा जो प्राय: मेरे भीतर झाँककर देखनेके लिए कभी-न-कभी विवश हुई हैं। महिलाओंसे आँख मिलाना शिष्टताके विरुद्ध होनेके कारण वे मेरे बारेमें क्या सोचती हैं उसे ठीक-ठीक जानना मेरे लिए सम्भव नहीं हो सका है और जो कुछ पलकें गिरते-गिरते मैं देख सका हूँ उसके बारेमें यदि फिरसे सोचने लगूँ तो मुझे अपने बारेमें ग़लतफ़हमी हो जानेका अन्देशा है, अत: मैं यहाँ महिलाओंकी बात भी नहीं करूँगा।

कुछ लोग मुझे तीसमार-खाँ समझते हैं। शायद वे सोचते हैं कि मैं – जिसने एक क्लर्ककी हैसियतसे कैरियर शुरू किया था – आज एक अफ़सर बन जानेके कारण अपनेको बड़ा लाटसाहब समझने लगा हूँ। और इसीलिए मेरा 'एप्रोच' सर्वदा 'क्लारिकल' हुआ करता है। उन्हें बड़ी परेशानी होती है कि क्यों मैं अपने असली रूपको भुलाकर उन सब बातोंमें अपनी टाँग फँसाये रहता हूँ जो उनकी मान्यताके अनुसार मेरी पहुँचसे बाहरकी होती हैं। अत: व्यवहारमें जब-जब वे लाजवाब

हो जाते हैं तब-तब वे एक ज़मानेमें मेरे क्लर्क होनेको मेरी कमज़ोरी समझकर उसका उल्लेख करना नहीं भूलते। उन्हें विश्वास है कि अहंकारकी मुझमें इतनी मात्रा है कि मैं अपने अतिरिक्त कुछ भी देखना पसन्द नहीं करता। उनके अनुसार इसका मूल कारण मुझमें विद्यमान अफ़सर बना हुआ क्लर्क है क्योंकि 'प्यादेसे फ़रजी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाय !'

कई सहयोगी मेरे भीतरके क्लर्कको कुछ मौक़ोंपर श्रेयस्कर भी मानते हैं क्योंकि या तो वे स्वयं किसी-न-किसी रूपमें क्लर्क रह चुके होते हैं या फिर दूसरोंको काटनेके लिए अपनेमें क्लर्की न होनेके कारण मेरे क्लर्कके 'ड्राफ़्ट'की उन्हें आवश्यकता पड़ा करती है। साहित्यिक-जन चाहते हैं कि मैं उनसे दो क़दम पीछे हटकर चलूँ क्योंकि यत्र-तत्र कुछ व्यंग्य-लेख लिख डालने-भरसे मैं उन-जैसे मचानपर वास करनेवाले अनेक पुस्तक-प्रणेता विद्वानोंकी पंक्तिमें नहीं आ सकता। और फिर एक क्लर्क लिख भी क्या सकता है क्योंकि न तो उसके पास अपना पुस्तकालय होता है, न बिना मूल्य आयी हुई पत्र-पत्रिकाएँ, न दफ़्तरसे उड़ायी हुई क़ैंची और न पड़ोसीसे माँगा हुआ गोंद। उसके पास तो होती है एक क़लम। और क़लमसे भी कहीं साहित्य-सर्जना होती है! अतः ऐसे साहित्यिक मित्रोंके साथ जब कभी चलनेका मौक़ा आता है तो मैं उनसे दो क़दम पीछे ही रहता हूँ तथा मौन धारण करके भानुमतीके पिटारेकी करामात देखा करता हूँ। मेरे एक मित्र मुझे अत्यन्त कृतघ्न समझते हैं क्योंकि आर्थिक कठिनाइयोंमें, मुझे उधार रुपया देनेके बावजूद, मैं उस एहसानसे इतना नहीं दब गया हूँ कि मेरे मुँहमें धूल घुसकर वह ज़िन्दगी-भरके लिए बन्द हो जाता। एक साहबको यह भी गिला है कि मैं कुछ लेख लिखकर ही अपने-आपको लम्बा-चौड़ा लेखक मान बैठा हूँ और साहित्यिक चर्चाओंमें अनधिकार रूपसे भाग लिया करता हूँ। अतः जब वे 'स्पष्ट'को 'अस्पष्ट' और 'ज्ञ'को 'ग्य' कहते हैं तो मुझे जहरका घूँट पीकर चुप रहनेके सिवा दूसरा चारा नहीं रहता। एक और सज्जन मुझे खुशामदपसन्द निरा बेवक़ूफ़

समझते हैं क्योंकि अपने किसी भी कामके लिए वे मेरे सामने घिघिआया करते हैं और जब मैं उनकी हालतपर तरस खाकर उनका काम कर देता हूँ तो वे मेरे पीछे मुझे गालियाँ दिया करते हैं और मित्रोंसे कहा करते हैं कि उन्होंने मुझे कैसा बेवक़ूफ़ बनाया। कुछ ऐसे भी महानुभाव हैं जो मुझे फूहड़, पाखण्डी और अहमक़ समझते हैं। फूहड़ इसलिए कि ईश्वरमें मेरा विश्वास है। पाखण्डी इसलिए कि मैं ईश्वरका ध्यान किया करता हूँ और लोगोंके न चाहनेपर भी उसकी चर्चा करके उन्हें 'बोर' किया करता हूँ और अहमक़ इसलिए कि अपना अमूल्य समय मैं ऐसी उपासना-में व्यतीत करता हूँ जिसका नाम कमानेसे ज़रा भी सम्बन्ध नहीं है। उनकी झुँझलाहटका एक यह भी कारण है कि जब-जब वे सुबह मुझे घर-पर फ़ोन किया करते हैं तब-तब उन्हें यही उत्तर मिलता है कि मैं ध्यानस्थ हूँ।

मेरे वे सभी रिश्तेदार जिनसे मैं अधिक सम्पन्न हूँ मुझे अहंकारी समझकर मुझसे कतराया करते हैं परन्तु जो मुझसे भी अधिक सम्पन्न हैं वे मुझे प्राय: नीचा दिखानेकी टोहमें रहते हैं और इसलिए मैं उनसे कत-राया करता हूँ। ऐने विद्वानोंकी भी कमी नहीं है जो मुझे स्वार्थी और कृपण समझते हैं क्योंकि मैं हर बातमें अपने फ़ायदेकी सोचनेका आदी हूँ और चायका बिल भी शायद ही कभी चुकाया करता हूँ।

मोहल्लेवाले मुझे अकड़बाज़ समझते हैं। उन्हें शिकायत रहती है कि मैं शामको उनकी चौकड़ीमें जाकर न तो दफ़्तरी बातें करके अपने पैतरों-का गरम होकर सरस बखान किया करता हूँ और न ताश या चौपड़ खेलनेमें समय चौपट किया करता हूँ। बीवी-बच्चोंसे छुड़ाकर अपने बीच मुझे घसीट ले जानेके जब उनके सब प्रयत्न विफल हो गये तो उन्होंने मेरा 'सोशल बॉयकॉट' कर दिया है यानी मुझसे दुआ-सलाम भी बन्द कर दी है। मेरे एकमात्र पड़ोसी (एकमात्र इसलिए कि मेरा मकान सिरेवाला है) मुझे असामाजिक जानवर समझते हैं और सो इसलिए कि न तो मैं

बच्चोंको लेकर होनेवाले पड़ोसियोंके झगड़ोंमें उनकी ओरसे मर-मिटनेके लिए तैयार रहता हूँ और न उनके बच्चोंके कारनामोंके लम्बे-चौड़े और सरस वर्णनसे मुझमें रस-निष्पत्ति होती है। अतः मुझमें रस उत्पन्न करनेके लिए लुक-छिपकर वे नित्य नये प्रयत्न किया करते हैं ताकि और नहीं तो कमसे कम वीर रस ही मुझमें उत्पन्न हो – जैसे सब्ज़ीके छिलके मेरे दरवाज़ेके सामने डालना, सुबह-शाम ज़ोरसे रेडियो बजाना, अपने बच्चोंसे लड़नेके लिए प्रोत्साहित करना, सुबह बाहर पड़ा हुआ मेरा अखबार ग़ायब कर देना आदि-आदि।

इन अनेक दृष्टियोंसे पाठकोंके सम्मुख मेरा ठीक-ठीक चित्र न खिंच पाया हो तो वे कृपया अपनी दृष्टिसे उसमें फेर-फार कर लें ताकि वह अधिक सुस्पष्ट बन सके। यक़ीन जानिए मुझे ज़रा भी आपत्ति नहीं होगी।

सम्मान समारोह

स्वराज्य प्राप्त कर लेनेके बाद इस देशमें जिस बीमारीने सबसे अधिक ज़ोर पकड़ा है वह है समारोहोंकी बीमारी। इस बीमारीसे शायद ही कोई अछूता बचा हो क्योंकि स्त्रियाँ हों या पुरुष, बच्चे हों या बूढ़े सभी इसके मरीज़ बन गये हैं तथा तरकारी, पकवान, घूरेकी सफ़ाई, यहाँतक कि कुत्ते, बैल, गाय, भैंस और बकरों आदिको लेकर रोज कोई-न-कोई समारोह हमारे देशमें हुआ करता है और उसे देखनेके लिए बसमें बेबसीसे धक्के खाते हुए बीवी-बच्चोंको समेटे आप चले ही जाते हैं। समारोह कोई नयी चीज़ हो सो भी बात नहीं। इसका इतिहास काफ़ी पुराना है और प्रचलन भी सभी देशोंमें है। परन्तु प्राचीन कालमें जो समारोह हुआ करते थे वे वर्षमें केवल एक-दो बार कुछ विशेष अवसरोंपर ही हुआ करते थे जैसे वसन्तोत्सव, होली आदि अवसरोंपर, बकरी और भेड़ोंकी समस्यापर नहीं। परन्तु आज मॉडर्न आर्टकी नुमाइशोंकी भाँति असंख्य समारोह होते हैं और आप बन-ठनकर धोती उछालते, उनमें भाग लेनेके लिए लपककर जा पहुँचते हैं जिससे भेंड़-बकरियोंका दर्शन आपको ही सबसे पहले हो। दूसरे शब्दोंमें भेंड़-बकरियोंके साथ आप भी बड़ी तत्परतासे भेंड़-बकरी बन जाते हैं और फूले नहीं समाते क्योंकि किसीका पहुँचा पकड़नेके कारण आप एक पहुँचे हुए व्यक्ति होते हैं और इस नाते जनताके खर्चेसे छपी हुई एक सुन्दर-सी आमन्त्रण-पत्रिका आपके पास पहुँची हुई होती है।

सम्भव है समारोहोंमें आपकी इस तरह दिलचस्पीका कारण 'समारोह' शब्दका अर्थ ही रहा हो जो आपने कोई अनुवाद-कार्य करते समय हिन्दी भाषा सम्बन्धी अपने ज्ञानको बढ़ानेके लिए किसी शब्दकोशमें पढ़ा हो। यदि यह सच है तो सबसे पहले आपको गीदड़ोंकी मण्डलीमें जाना चाहिए क्योंकि रातको गीदड़ोंका 'हूँ-हा' शब्द शब्दकोशीय अर्थमें एक समारोही साबित होगा। परन्तु आप गीदड़ोंके समारोहमें भाग नहीं लेते, शायद इसलिए कि उनमें न तो आमन्त्रण-पत्रिका छपवानेकी प्रथा है और न किसी गीदड़ नेताको अग्रगण्य बनाकर उसकी 'हूँ-हा'के बाद 'हूँ-हाँ' करनेका रिवाज है। वे तो बेचारे जब बोलते हैं तो सब एक साथ बोलते हैं। शब्दके अर्थकी दृष्टिसे वे कुछ भी अनर्थ नहीं करते क्योंकि जो वे जंगली जानवर होकर करते हैं वही तो हम-आप भी करते हैं। जो हो, मैं तो यहाँ इतना ही कहना चाहता हूँ कि हमारा देश आज इस पेचीदा बीमारीसे बहुत अधिक बीमार है और उसका कष्ट मुझे होता है। क्योंकि जब-जब मैं किसी समारोहकी ख़बर पाता हूँ तब-तब न चाहनेपर भी उसके 'सिम्पटॅम' मेरे सामने आ जाते हैं और मैं झल्ला उठता हूँ जैसे वह बीमारी मुझे ही होने जा रही है।

ऐसी ही झुँझलाहट मुझे आज सुबह हुई जब दफ़्तर पहुँचते ही मेरे मित्र और खड़ी बोलीके एक अन्तर्देशीय कवि और लेखकने खड़े होकर विनयसे सिकुड़कर एक सम्मान-समारोह पत्रिका कृतकृत्य होते हुए मेरे हाथोंमें थमा दी और मेरी टिप्पणी सुननेके लिए नीचे कुरसीपर अधिष्ठित होकर आँखोंका मैल निकालने लगे। कहना न होगा कि पत्रिकामें वही सब-कुछ था जो ऐसी अन्य पत्रिकाओंमें होता है। जैसे मुख-पृष्ठपर उनका एक फ़ोटो, एक उद्गारहीन भाषण, उनका संक्षिप्तके नामपर लम्बा परिचय और ऐसी साहित्यिक सेवाएँ जो दूसरे प्रतिभावान् सुविख्यात लेखक किया करते हैं, राष्ट्रीय आन्दोलनके सिलसिलेमें जेल-गमन, कुछ पुरानी साहित्यिक गोष्ठियोंके चित्र आदि-आदि। संक्षिप्तमें पत्रिका सम्मानित महो-

दयकी ही भाँति परम्परावादी थी। इस घिसे-घिसाये मैटरमें तीन ऐसे फ़ोटो थे जिन्हें देखकर इस परितापमें भी मैं अपने मित्रके बिखरे हुए व्यक्तित्वको बटोरकर उसकी तुलना पत्रिकाके चरित्रांकनसे करनेके लिए मजबूर-सा हो गया। पहला वह फ़ोटो था जिसमें वह हाथ जोड़े किसी सुमुखी मन्त्राणीके सम्मुख, जो पत्नी होते हुए भी सभापतिका आसन ग्रहण करनेके लिए घेर-घारकर बुलायी गयी थीं, सस्मित, विनयकी मूर्ति बने ऐसे झुके हुए थे जैसे वे मन्त्राणीजीपर गिर पड़नेसे अपने-आपको ज़ोरसे रोके हुए हों। सामने मन्त्राणीजी भक्ति-भावसे निहाल होकर हाथ जोड़े ऐसे आँखें मूँदे हुए थीं जैसे वे साहित्य देवताका स्मरण करके मन-ही-मन 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'में घुल-मिल गयी हों। मन्त्राणीजीकी भावाकुलतासे लाभ उठानेके लिए हमारे सुअवसरवादी लेखक महाशयकी आँखें सामने मन्त्राणीजीके उस हृदय-प्रदेशपर अटक गयी थीं जो विवस्त्र होकर बाहर झाँक रहा था। साथ ही पैंतालीस डिग्रीके एंगलसे वे यह भी देख रहे थे कि जनता उनके देखनेको कहीं देख तो नहीं रही है। दूसरा वह फ़ोटो था जिसमें वे व्यासपीठपर 'माईक'के सामने खड़े भाषण दे रहे थे और उनके ऊपरी दाँत जो नीचेके दाँतोंके समान ही दिखावेके थे, यानी नक़ली थे, नीचेवाले होठपर चुनावमें खड़े उम्मीदवारकी भाँति लटक आये थे, मानो वह अपने मुहावरेके सत्यको सिद्ध करनेके लिए मैदानमें उतर आये हों। तीसरे फ़ोटोमें वे दस वर्ष पूर्व किसी कवि-गोष्ठीकी अध्यक्षता करते हुए कवयित्रियोंके एक जमघटमें विराजमान थे। उनके चेहरेके भावको देखकर ऐसा लगता था कि उन्हें साहित्यकी अपेक्षा कवयित्रियोंके पतियोंकी ही अधिक चिन्ता थी क्योंकि उनकी नाक ऊपर टोपीकी नोककी सीधमें च्युत होकर वातावरणमें कवयित्रियोंके पतियोंके अस्तित्वको सूँघ रही थी।

इन तीन चित्रोंमें अंकित मेरे मित्र तथा सम्मानित लेखक महोदय-की आँख-नाक और दाँतोंने मुझे कुछ समयके लिए अन्तर्मुख बना दिया और मैं निर्निमेष सामने बैठे हुए अपने मित्रकी ओर ताकता रहा। उस

ध्यानस्थ अवस्थामें उनके व्यक्तित्वके अनेक आवरणोंको हटाकर जब मैंने देखना शुरू किया तो मैंने देखा कि वे आवरण ठीक प्याज़के छिलकों-की भाँति हैं। एक-एक छिलका निकालते जाइए और आप देखेंगे कि अन्तमें रिक्तताके सिवा आपके हाथ कुछ भी नहीं आता। परन्तु ठीक प्याज़के छिलकोंकी ही भाँति यह सब आवरण मोटे-पतले थे और चूँकि इन्हीं आवरणोंसे मेरे मित्रका चिर-परिचित व्यक्तित्व बना है, मैं यहाँ उन अवगुण्ठनोंको क्षण-भरके लिए उठाना आवश्यक समझता हूँ ताकि मेरी ही भाँति आप भी देख सकें कि उनकी ओटमें क्या है।

आपकी सुविधाके लिए मैं उन्हें 'कण्टक' कहना पसन्द करूँगा क्योंकि चुभकर या घुसकर ही उन्होंने साहित्य-जगत्में अपना आसन जमा लिया है और सो इस प्रकार कि नेताओंके झुण्डमें वे जेल जाकर गान्धी टोपी-की नोंक-से घुसे थे, प्रकाशकोंके दुर्गमें क़ैंचीकी नोंक और गोंदके सहारे घुस गये थे और साहित्यिक संसारमें धुरन्धर लेखकोंका चरण-चुम्बन करके उन्होंने प्रवेश किया था। इसी भाँति अन्य लेखकोंके नाम और प्रकाशकोंकी मायासे फ़ायदा उठाकर, उनकी रचनाओंको एकत्रित करके अपनी ओरसे पिटी-पिटायी भूमिका देकर उन्होंने सम्पादक वर्गको पंक्चर कर दिया था। राष्ट्रभाषाके हर प्रकाशकके वे वैतनिक परामर्शदाता हैं क्योंकि समालोचनार्थ आयी हुई पुस्तकोंसे बने हुए उनके निजी पुस्त-कालयकी अलमारियोंमें पुस्तकोंके पीछे अदृश्य, क़ैंची और गोंदमें तैयार ऐसी अनेक पाण्डुलिपियाँ विद्यमान हैं जो प्रकाशककी फ़रमाइश होते ही पाँच मिनिटके अन्दर किसी भी कक्षाके लिए टैक्स्ट बुक्सके लिए प्रेषित की जा सकती हैं।

नेताओंकी चिलम भरनेसे वे अनेक समितियोंमें भरती कर लिये गये थे। परिणाममें समितियोंका कार्य तो अधिक कठिन हो गया परन्तु उनके अपने इकमंज़िले मकानपर दो और मंज़िलें चढ़ गयीं। साहित्यिक क्षेत्रमें जमनेके लिए उन्होंने एक ऐसे गुरुकुलकी योजना

बनायी जिसमें एक गुरु और अनेक लघु शिष्याएँ हों। परिणाम यह हुआ कि उनका शिष्या-सम्प्रदाय इतना विस्तृत हो उठा है कि देशके हर हिस्सेमें उनकी कोई-न-कोई शिष्या अवश्य विद्यमान है। परन्तु कण्टकजी ऐसे साहित्यकार नहीं हैं जो केवल अपने लेखनसे नाम पाते हैं। अतः अनेक उदित और अनुदित मीराओंके हृदयमें अधिष्ठित होने और प्रकाशकोंके जमघटमें बाँसुरी बजानेके बावजूद वे सन्तुष्ट नहीं हुए और एक दिन मकानके सामनेवाले नीमके पेड़के नीचे खाटपर बैठे-बैठे सीधे हाथकी उँगलीसे बायें नथनेका अन्वेषण करते हुए उन्होंने एक ऐसी योजना बना डाली कि 'हींग लगे न फिटकरी और रंग चोखा'। इस योजनाके अन्तर्गत प्रकाशकोंके पैसे, शिष्याओंके प्रेम, पत्रकारोंके सहयोग तथा स्थानीय नेताओंके सौजन्यसे एक ऐसा अवसर पैदा किया गया जिस-पर कण्टकजीकी साहित्यिक सेवाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जा सके। कण्टकजीके त्रैमासिक परिश्रमके कारण ही इस योजनाके अनुरूप कण्टकजीका वह सम्मान-समारोह सम्पन्न हुआ जिसकी पत्रिका आज मेरे सामने है।

पत्रिका उन्हें थमाते हुए मैंने कहा "सचमुच आप प्रशंसनीय हैं।" वे समझे मैं उनकी प्रशंसा कर रहा हूँ अतः गद्‌गद भावसे बोले, "अभी तो महाराज इस सत्संगकी चर्चा भी होगी", – इतना कहकर उन्होंने झट जेबमें हाथ डाला और एक प्रेस-कटिंग मेरे सामने आ गया। कहना न होगा कि कटिंगमें सम्मान-समारोहकी ही चर्चा की गयी थी और कण्टकजीकी साहित्यिक सेवाओंमें चार-चाँद लगा दिये गये थे जिनकी ज्योतिसे कण्टकजीका चेहरा अब भी उजला-उजला लग रहा था। मैंने कहा, "आप धन्य हैं" और कण्टकजी फूले हुए उठ खड़े हुए मानो उन्होंने एक और व्यक्तिसे लोहा मनवा लिया हो।

पापाजी : एक चिन्तन

'विचित्रताका नाम ही सृष्टि है' – यह मान लेनेपर भी हम उस चिरन्तन सत्यकी गणना इस गणतन्त्रवादी युगमें भी उतनी नहीं करते जितनी 'लला'की माँकी धारणाओंकी, फिर चाहे वे धारणाएँ सास-ससुरकी ज्यादतीको प्रस्थापित करनेके लिए श्रीमतीजीके आटा गूँधते-गूँधते किये गये अथक बौद्धिक परिश्रमका फल हों, चाहे आपके 'निकम्मेपन' के सम्बन्ध-में हों – जो ख़िताब आपकी कर्म-विरुद्ध धर्मपत्नीने आपके नाज़ुक और पिघलते क्षणोंमें आपकी सारी डिग्रियों, अपने दोषों और दूसरेके गुणोंको भुलानेकी भाँति भुलाकर आपपर बेजोड़ मढ़ा हो या उनके स्वभाव और आपके स-भावके अभावके 'संजोग' से बनी खुरदरी मूर्त्तिके लटपटे ढंग और अटपटी हरकतोंकी भूरि-भूरि प्रशंसाविषयक हों।

दूसरे शब्दोंमें इस सत्यको जानते हुए भी हम उसकी ओर उसी प्रकार दुर्लक्ष्य किये रहते हैं जिस प्रकार अपने 'काका' या 'काकी' की शरारतोंकी ओर, फिर चाहे वे शरारतें पड़ोसीकी साइकिलका 'वाल' निकालनेसे लेकर 'शान्ति-हरण' और 'अशान्तिवरण' तक ही क्यों न हों। सत्यकी ओर इस दुर्लक्ष्यका कारण आजके संसारमें 'स्व'-द्वारा 'पर'-का डकारा जाना है, फिर चाहे वह अर्थसहित हो या अर्थरहित।

हमारे जीवनमें कई क्षण श्रीमतीजीके छोटे-बड़े और सस्ते संस्करणों-सहित मायके चले जानेके बाद हमें इसकी याद दिलाते हैं, पर हम उसे उसी भाँति भूल जाते हैं जिस भाँति घरकी अबलाका सबल रूप देखते

ही अपने आदमीपनको, फिर चाहे घरके बाहर आपके अस्तित्वपर ब्रह्मरूप सम्पादकोंने अपनी पैनी क़लम और मोटी नज़रसे अपने पत्रके कॉलम रँगें हों या संस्थाओंने आपसे कुछ पानेके लिए महफ़िलें सजाकर लाउडस्पीकरोंपर चटपटे भाषणों-द्वारा आपकी प्रशंसाके पुल बाँध-बाँधकर श्रोताओंके कानों और अपने कार्यकर्त्ताओंके गलोंको साफ़ किया हो।

इस सत्यकी प्रतीति मुझे उस दिन हुई जिस दिन श्रीमतीजीसे कुछ चिकनी-चुपड़ी सुननेकी अदमनीय और एक अरसेसे संचित लालसासे व्याकुल होकर मैं दिल्लीके बाज़ारकी तंग और अँधेरी आँतों (गलियों) को छानता, खोपड़ी तपाता, उनसे कुछ प्यार-भरी सुननेकी उत्कट प्यासको घर पहुँचने तक बुझानेके लिए मीठे सोडा-वाटरकी बोतल (?) हलकसे नीचे उतारकर लालाके अनुरोध और इण्डिया गेटकी घासपर गरमियोंकी भावनी शामको देखी हुई सुहावनी परकीयामें स्वकीयाका आरोप करके की हुई गुदगुदानेवाली कल्पनाको साकार करनेके लिए पैंतीस टके (रुपये) लालाकी पसीजी हथेलीपर गिनाकर तीस वर्षीया श्रीमतीजीको प्रसन्न करने और कुछ नरम-नरम वरदान पानेके हवाई महल बनाता घर पहुँचा। श्रीमतीजी योगिनी-सी मुक्तकेशा, मुँहपर राख पोते, मैला पेटीकोट पहने, हाथमें झाड़ू और बग़लमें घमण्डी (घमण्डी मेरे छोकरेका नाम है) को दाबे पड़ोसीके दादा-परदादाओंसे लेकर आनेवाली पीढ़ियों तककी ख़बर ले रही थीं। घमण्डीकी अम्माके इस रूपसे सुपरिचित होते हुए भी मैं 'उनकी' मुखमुद्रा और पैंतरे देखकर सकपका गया। कहना न होगा कि उनके भरे मस्तिष्क और खाली वाक्य-बाणोंसे परकीया और स्वकीया विषयक कोमल भावनाओंका निचोड़ (रस) जो अनायास ही मुझमें पैदा होने लगा था, मिक्सचरकी भाँति एक होकर कुछ प्यार-भरी सुननेके चढ़ते हुए बुख़ारको ठण्डा करने लगा। पचास बार सिर खुजाकर और सौ-सौ बार लौट-लौटकर अपने पुरुषत्वका बार-बार स्मरण करता, उस असहनीय परिस्थितिमें अपना सारा साहस बटोरकर, जब मैं दबे

पाँव श्रीमतीजीके पास पहुँचा तबतक वे नरम पड़ चुकी थीं, क्योंकि तब वे बमकती हुई खुले बालोंमें चाणक्यकी चोटीकी भाँति गाँठ बाँध रही थीं। मैं इस फिनिशिंग टँचसे परिचित था अतः सोती हुई सिंहनीको छेड़नेके बजाय उससे कतरा जाना ही योग्य समझकर उलटे पाँव लौट आया और चुपचाप खाटपर फैले हुए नन्हेंके पोतड़ोंको एक ओर सरकाकर अपनी तक़दीरका फ़ैसला सुनने बैठ गया। वे फ्रण्टियर मेल-सी दनदनाती हुई आयीं तो खिसियायी-सी छूटते ही पूछ बैठीं – "ये क्या है?" "तुम्हारे लिए साड़ी लाया हूँ" – मुँहसे निकल पड़नेवाली रालको गटकता हुआ मैं घिघिआया और काँपते हाथोंसे साड़ी उनकी ओर बढ़ा दी। साड़ीके निरीक्षणका जो असर हुआ, उसका उल्लेख करके मैं आप-जैसे अपने साथियोंकी सहानुभूति नहीं पाना चाहता। हाँ, इतना बता देना आवश्यक समझता हूँ कि साड़ीपर छोटे-छोटे नाज़ुक प्रिण्टकी जगह यदि एक अच्छा-खासा रंग-बिरंगा जंगल होता तो मंगलकी सम्भावना हो सकती थी और यदि हलके रंगके बजाय चटकीला रंग होता तो मेरे मुँहका रंग उड़नेकी नौबत न आती।

सुबहकी धरी हुई खाकर जब मैं शामको एक आवश्यक कामके बहाने बाहर निकला तो वैचित्र्यकी समस्या मेरे मस्तिष्कको कुरेद रही थी। श्रीमतीजीकी 'पर्सनैलिटी' और अपने जीवनकी निरर्थकतापर विचार करता चला जा रहा था कि 'पैणों' शब्दके 'ण' की धारने अकस्मात् मेरी विचारधारामें 'पंक्चर' कर दिया। देखा तो सामने एक जलसा दिल्लीकी स्वतन्त्रताके पश्चात्की विशेषताको चरितार्थ कर रहा था। चूँकि यहाँका कोई भी फंक्शन चाहे वह सेनेटरी ड्राइव, फ़ैमिली प्लानिंगके बारेमें हो, या सामाजिक, वैवाहिक, कौटुम्बिक या धार्मिक 'एण्टरप्राइज़' हो, चुपचाप नहीं होता, इसलिए इस जलसेमें भी नेताके मुसाहिबोंके भाँति चारों ओर अपने अगुआओंके सिद्धान्तोंके ग्रहण और प्रसारणार्थ लाउड-स्पीकर चिपके हुए थे। स्टेजकी ओर मेरा ध्यान गया तो देखा कि मेरे

चिरपरिचित भारी-भरकम ऊँचे पूरे पापाजी नथुने फुलाये नेताके अन्दाजसे और पैसेंजरकी चालसे अटक-अटककर गान्धार के 'ग' और पंचमके 'प' (ग प) के लहजेमें आलाप रहे थे – 'पाइयों ते पैणों' – तभी श्रोताओंमें कोई बिगड़ा जीनियस अपनेको रोक न पानेके कारण ज़ोरसे हँस पड़ा, जिसे सुनकर पापाजीने सशंक दृष्टिसे अपने निकट बैठी हुई तोंदिल कमलेशजीपर, जिन्होंने उनके साथ बीस सर्दियों-गरमियोंके उतार-चढ़ाव देखे थे और चौदह काका-काकियोंकी नाक पोंछकर ७२ मकानोंकी दीवारोंपर आधुनिक शैलीमें चित्रकारी की थी, दृष्टिपात करके अपने कथनको सुधारते हुए कहना आरम्भ किया, "पाइयों ते काके दी माँ नु छडके पैणों ! मुझे स्टेजपर बुलाकर मेरे नाल जेड़ी किरपा कीती गयी है ओदी ज़िम्मेदारी निभान दी मैं जी जानतौं कोशिश कराँगा''''त्वान्हू पता होना चाइएदा के साडी 'तन्दुरुस्ती होर ख़ुराक़' दी सकीम जेदे बिच्च सेअत बनान वास्ते साडे सभापतीने हुण जेड़ी अपील कीती है ओदे वास्ते सानू ख़ालस कीऊ (घी) दा इस्तेमाल करना चाइएदा''''। सट्रांग राषटर दे वास्ते सानू तगड़ा होना चाइएदा, असी देखदेने (देखते हैं) के साडे एस देश दे होर प्रा कलचर होर कारीगरी (कला) दी सकीमें बनान दे वास्ते जेड़ी कोशिश करन लग्गे हैं, एकदम बेफ़िज़ूल है, मेरे ख़्याल दे बिच्च साडे देश दा कलचर बनान दे वास्ते एग्रीकलचर में सानू तरक़्क़ी करनी चाइदीए''''दूजे लफ़ज़ोंमें मैं ज़ोर नाल कहूंगा कि साडा कलचर काश्तकारी मंजूर कर लीत्ता जाय''''।" 'ज़ोर' शब्द उचारते समय पापाजीका स्वर फटने और पैर पटकनेसे श्रोताओंमें जो उत्साह फैलकर 'जीओ, जीओ' के आशीर्वाद उठने लगे तो पापाजी मैदान मारे-से पैंतरा बदलकर आगे बोलने और उत्साहित श्रोताओंको ख़ामोश होकर सुननेके लिए प्रार्थना करनेके इरादेसे विनयके साथ खींचातानी करते हुए कहने लगे – "तुवान्हूं ऐस ख़िदमतदार दा निवेदन हेगा कि जेडे प्रा खड़े ने ओ बैठके शान्ति नाल सुनन दी किरपा करें" निवेदन करते समय पा 'जी

'विनय' की जगह 'रौद्र' का अभिनय करते-से लग रहे थे, क्योंकि उनकी भौंहें तनी हुई थीं, मुट्ठियाँ कसी थीं, गोभीके पकौड़े-सी नाकके प्रशस्त नथुने फूलकर गुब्बारा हो रहे थे और वनस्पति घीकी खुश्कीका ग़ुबार, दोनों मुट्ठियाँ हवामें उछाल-उछालकर मातम मनाते-से विनयवाची शब्द निकालनेमें वे 'आल्हा-ऊदल'के जोशका सर्वांगीण परिचय दे रहे थे, कुछ मद्रासी लुंगीधारी जो इडली निगलकर और कॉफ़ी गटककर 'इलया इलया' करते सुंघनी सूँघते नाक बजाते पापाजीका भाषण समझने-समझानेका प्रयत्न कर रहे थे, उनमें-से एकने पापाजीका निवेदन सुनकर बड़े अदबसे दूसरेसे 'तेरि उमा' कहकर दुबककर बैठनेका अनुरोध किया। तभी सभामें कोहराम मच गया। 'पा'जो, जिन्होंने उसे 'तेरि उमा' कहते सुन लिया था, मंचसे कूदकर कहनेवाले मद्रासीकी छाती-पर बैठे उसे बुरी तरह 'कूट' (पीट) रहे थे। मद्रासी मातृभाषामें रो रहा था और पा'जी उसके पितरोंका उद्धार करते हुए वर्जिशकी करामात दिखानेपर तुले हुए थे। न धराशायी मद्रासी उनकी बात समझ पा रहा था और न पा'जी मद्रासीकी लटकेदार चीखें और विलम्बित हिचकियाँ। अपने डील-डौल और चौदह वर्षीय दिल्ली-वासके औसानसे जब मैं भीड़में अपना सिर दाख़िल करता हुआ आड़ा घुसा और आवाज़ भारी किये पूछ बैठा, "गल की है, पापाजी, क्यूँ ग़रीब नूँ कुट्टन लगे हो" तो पा'जी की वीर-श्रीको जैसे एक पैग मिल गया। मद्रासीपर नूतनतम प्रहार करते हुए वे रेंक पड़े — "साला मादी गाली देंदा है।" बीच-बचाव करके अँगरेज़ीमें मद्रासीसे पूछनेपर पता चला कि उसने महज़ 'तेरि उमा' शब्द कहा था जो उसकी भाषामें हिन्दीके 'समझे?' अँगरेज़ीके 'ओ के?', मराठीके 'बर?' बंगालीके 'भालो?' और पंजाबीके 'आहो' या 'चंगा' का पर्याय हो सकता है। जब पापाजी-को मैंने 'तेरि उमा' का अर्थ समझाया तो वे निर्विकार-से 'कोई डर नहीं' (कोई बात नहीं) कहते हुए इस प्रकार मंचपर लौट आये

जैसे कुछ हुआ ही न था। इस निर्विकार निर्लिप्तता और सुँघनीकी गोल डिब्बीको देखकर जो अब भी पानकी पीक-सी वक्रकाय, प्रश्नचिह्न-सी भूमिपर पड़ी थी, मुझे लगा कि सृष्टिके वैचित्र्यकी वह बात सोलहों आना सत्य है।

इस घटनाने मेरे चंचल चित्तको, जिसे श्रीमतीजीने बारह वर्ष पूर्व सुहागरातके दिन लताड़की बानगी दिखाकर छेड़ दिया था, स्थिर कर दिया। पापाजीकी निर्विकार गम्भीर मुद्राको देखते-देखते मुझे उनके कई विगत-अवगत रूप दिखाई देने लगे; जैसे भंगका नशा सवार होनेके बाद चटाईका कोई टुकड़ा नज़रके सामने पड़ जानेसे मस्तिष्क उसके अन्दर पैठकर उसकी बुनाईके असंख्य अन्दरूनी आवरणोंको खोलने लगता है। उन रूपोंमें-से कुछ रूप, जो मेरे स्मृति-पटलपर श्रीमतीजीकी तसवीरके बावजूद स्पष्टतया अंकित हैं और विवेच्य विषयमें सिंधनके तंग ब्लाउज़ और मेरे परम मित्र लाखासिंहकी तंग पतलूनकी भाँति 'फिट' बैठते हैं उनकी चर्चा श्रीमतीजीसे दुबारा इण्टरव्यू होनेकी याद आने और घमण्डी-की सरस नाक और उलझे हुए बाल देखनेके पहले कर लेना बुरा नहीं, हाँ, यदि आपके चाय बनानेका समय या 'सकूल'से लौटे 'पूची', 'पन्नो' या 'रद्धो' को रोटी या खेल खिलानेका समय हो गया हो तो बात दूसरी है। उस दशामें मैं छटपटाकर आपसे अनुरोध करूँगा कि आप पत्नी-व्रतका त्याग करके अखिल विश्व सभ्य नारी परिषद्के नियमों-का उल्लंघन करके मानवीके 'काग़ज़ी' हृदयपर कुठाराघात न कीजिए।

पापाजीसे जो मेरा प्रथम परिचय हुआ — उन्हींके घरमें। वे 'कच्छा' (जाँघिया) पहने नंगे बदन खाटपर लेटे बायें हाथकी ज्येष्ठिकासे सोधा नथना कुरेदते मेरे पेपरमें, जो उनके माँगनेके कारण मैं अभीतक न देख पाया था, 'मेट्रिमोनियल' पढ़ रहे थे। कमरेमें एक साफ़-सुथरा बेल-बूटों-की रंगीन चादरवाला बिस्तर लगा हुआ था जो उनकी रंगीनी और कमलेश-जीकी शोखमिज़ाजीका विज्ञापन करनेमें समर्थ था। दूसरी ओर एक बहुत

बड़ा टीनका सन्दूक़ था, जिसपर बिलातरतीब 'कॉस्मेटिक्स' रखे हुए थे। किताबके नामपर बिस्तरके सिरहाने 'फ़िल्म फ़ेयर' पत्रिका पड़ी थी, जिसपर चिपकी 'सरक्युलेशन स्लिप' जता रही थी कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति है। बादमें मुझे पता लगा कि मेरे पापाजी, जिन्होंने कभी कॅम्यूनिस्ट थ्योरीपर उड़ता-उड़ता विचार किया था, स्त्रीको 'कॅमोडिटी' समझकर किसी व्यक्ति-विशेषकी सम्पत्ति नहीं मानते थे और स्त्रीलिंग होनेके कारण 'किताब' या 'पत्रिका'पर भी उन्होंने बड़ी ईमानदारीसे कभी भी अपना स्थायी अधिकार नहीं जमाया था। कमरेकी दीवारें उनके बदनकी ही भाँति नंगी थीं। सिरहानेके सामनेवाली दीवारपर एक ऐक्ट्रेसकी अध-नंगी तसवीर अवश्य थी – जिसमें विज्ञापनार्थ किसी सिगरेटकी छाप और किसी पानवाले मित्रकी मित्रताकी माप (दण्ड इसलिए नहीं जोड़ूँगा कि कैलेण्डरकी छीना-झपटीमें शीशेका गिलास टूटकर दण्डका भुगतान हो चुका था) के साथ 'तसवीर तेरी दिल मेरा बहला न सकेगी' वाली आर्तता भी अंकित थी।

मुझे देखते ही पापाजी चट्-से कोनेमें थूककर झट-से मुझे गले मिलने उठ खड़े हुए। (श्रीमतीजीके रोज़ाना प्रहार देखकर उन्होंने यह अन्दाज़ लगा लिया था कि मैं इंशोर्ड नहीं हूँ)। बड़ी आवभगतसे उन्होंने मुझे मोढ़ेपर बिठाया और 'मैं क्या' (मैंने कहा) का मन्त्र उच्चारते हुए अन्दर घुस गये। थोड़ी देर बाद जब वे तहमत लगाये आये तो तीन पाववाले दो लस्सी-भरे गिलास लिये कमलेशजीको लेकर। उनकी वे कमलेशजी और जगत्की 'पैणजी'के स्नो, पाउडर और सुर्खीसे फिनिश्ड मुख और लिपिस्टिकसे रँगे ख़ूनी होठोंके साथ-साथ खिंची-तनी काया देखकर मेरा ख़ून गाढ़ा हो गया। मैं घमण्डीकी माँको याद करके अपने भाग्यको कोसने ही वाला था कि 'नमस्ते जी'का गुठल, मोटा, भारी रस्टिक बाण जो उनके मुँहसे छूटकर थूक उड़ाता मेरे मुँहपर बरसा तो जैसे मेरे दाँतोंके नीचे किरकिरी-सी आ गयी और श्रीमतीको कोसनेवाला

मेरा मन एक बार उनकी प्रशंसाके लिए लालायित हो उठा।

'यथा नाम विपरीत गुण'वाली कमलेशजीके साथ-साथ लस्सीका चिकना गिलास मेरी ओर बढ़ते ही 'इवनिंग-इन-कनॉट प्लेस' की गन्धको चीरती देशी घीकी जो सुगन्ध उनके शरीरसे आयी वह आज भी सुगन्धके बारेमें मेरी परिभाषाको अधूरी छोड़े हुए है – लस्सीका गिलास समाप्त करके पापाजीने अपने पिण्ड (गाँव)का उल्लेख करना आरम्भ किया, जिसे सुनकर मुझे अपने पितर कनागती ब्राह्मणोंकी चिकनी-चाँद, उस्तरेकी धार और लटकती चुटियाके साथ-साथ छँटी हुई मूँछें याद आ गयीं। 'कीऊ'का महात्म, 'दुद्ध', 'मलाई लस्सी', मक्खन, सरसोंका साग, सैर और मायाविषयक ज़ोरदार बातें सुनकर अजीर्ण हुआ-सा मैं उठ खड़ा हुआ। उस दिनसे कमलेशजीने मुझे 'प्रा' मान लिया, प्राकी पत्नीको 'पैण' और पैणके बच्चोंको अपने काका-काकी। पापाजी तो मेरा अख़बार, साइकिल, रेडियो, स्याही, पॉलिश आदि अपनी ही समझने लगे।

दूसरे दिन मैंने पापाजीको दफ़्तर जाते देखा तो आँखें पथरा गयीं। वे एक क़ीमती सूट पहने, जैसा मुझे अपने आनेवाले सात जन्मोंमें होनेवाले विवाहोंमें भी 'ससुरों'की ओरसे न मिलता, स्नो पॉउडर और गालोंपर तनिक सुरखीका टँच दिये सजे एक ऊँचे आई-सी० एस्० ऑफ़िसरकी शानसे चले जा रहे थे। उन्हें वही सूट निरन्तर पहनते देखकर मैंने बादमें जाना कि वह उन्हें एक बड़े मज़बूत पलंग और बीस जोड़ा रेशमी नाड़ों (कमरबन्द) आदिके साथ कमलेशजीके विवाहमें मिला था। आई-सी० एस्०की शानमें-से क्लर्ककी आन (?) घटानेपर जो बाक़ी बचा, उसका 'एकाउण्ट' खोजते समय मुझे पता लगा कि पापाजीकी ६० रुपये दफ़्तरी इनकमके साथ-साथ आमदनीके कुछ 'आउटकम' ज़रिये भी हैं, मसलन वे कमलेशजीके नामसे बीमा-एजेण्ट हैं, देहलीमें स्थानाभावके सुअवसरसे लाभ उठाकर वे लोगोंको 'जैसा आसामी वैसा दर'

वाली कॅमीशनपर मकान दिलाते हैं और सामने सड़ककी पटरीपर बैठनेवाले अण्डेवालेसे भी वे कुछ पाते हैं जो प्रायः कॅमिटीके आदमी आते देख चलानके भयसे अपने (?) अण्डोंकी टोकरियाँ उनके यहाँ रखता है। छुट्टियोंके दिन कमलेशजीरूपी पास और मित्रोंकी 'आस'से फ़ायदा उठाकर वे 'ऐश' से सिनेमा देखते थे। दूसरे शब्दोंमें 'माया' कमानेके उन्होंने कई 'मय्यर' अपनाये हुए हैं और आमदनीके नये-नये ज़रिये खोज निकालनेमें 'प्रा' दम्पति एक शोधार्थीकी लगनसे बराबर 'परयतन' शील थे। उन्हें अखण्ड विश्वास था कि भाग्यके 'सटोक'से वे एक-न-एक दिन अवश्य बड़े आदमी बन जायेंगे और उनका विश्वास एक हद तक ठीक भी उतरा है क्योंकि एक बड़े आदमीकी हैसियतमें ही आज वे इस 'सटेज' पर दो ज्ञानकी बातें सुनानेके लिए टैक्सीमें बिठाकर लाये गये हैं और मैं किसी समयका उनका पड़ोसी कमलेशजीकी छोटी मूँछोंकी ही भाँति, बिना बदले-बढ़े, उनका श्रोता बना खड़ा हूँ।

पापाजीका रिव्यू करते ही मुझे लगा कि सृष्टि-वैचित्र्यकी बात सत्य है, पापाजी परम सत्य हैं, घमण्डीकी माँ चरम सत्य है, असत्य हूँ तो मैं – केवल मैं – मेरे अटपटे विचार !

मैं रेडियो हूँ

मैं रेडियो हूँ – रेडियो कलाकारोंका जनक। इसीमें मेरी महानता है। ठेठ हिन्दीमें मुझे 'आकाशवाणी' भी कहते हैं, और इस नाते कई हिस्सोंमें विभाजित होनेपर भी मैं एक हूँ – सर्वव्यापी हूँ।

मेरा काम बोलना है – चाहे खरीदा जाऊँ, चाहे किराये या मँगनी-पर लाया जाऊँ, मुझे बोलना ही पड़ता है। चुराये जानेपर भी मेरी ज़बान चुप नहीं रहती। मैं बोलनेका महत्त्व जानता हूँ, और इसीलिए एक लीडर वक्ताकी भाँति ठहर-ठहरकर बोलनेमें अभ्यस्त हूँ। वैसे दिनमें कुछ देर विश्रामके लिए रुक जाता हूँ। इस प्रकार बोलते-बोलते ही मेरा अन्त होना निश्चित है, यह मैं जानता हूँ, फिर भी मेरा बोलबाला कहीं नहीं है।

मारकोनी दादाके समयसे लेकर अबतक मुझे उन्नतिका बहुत ही थोड़ा अवसर मिला है। अन्य व्यक्ति केवल बोलनेके ज़ोरपर ही मेरे देखते-देखते कुछसे कुछ बन गये। पर मैं जहाँ था वहीं हूँ। फिर भी मैं अपने विधाताके विरुद्ध आवाज़ नहीं उठा सकता। इस दिशामें आज स्वाधीनताके युगमें भी मैं पराधीन हूँ। पिछले महायुद्धमें तो मेरा मुँह भी बन्द कर दिया गया था और वर्षों तक मैं चहारदीवारीके अन्धकारमय क़ैदखानेमें बन्द पड़ा रहा। आज़ादीके साथ-साथ उज्ज्वल भविष्यकी आशा हुई थी, पर मेरे जीवनमें न तो परिवर्तन होना था, न हुआ। बोलनेकी स्वतन्त्रता अवश्य मिल गयी, जिसके फलस्वरूप मैं दिल खोलकर बोलने

लगा। चायका स्टॉल, पानकी दूकान, नाईका सैलून, लॉण्डरी, गली-कूचा, घर-बाज़ार, मतलब यह कि घर-बाहर मैंने ऐसा कोई स्थान नहीं छोड़ा जहाँ मैं न बोला हूँ, और इतना बोला हूँ कि सुननेवाले पास-पड़ोसियोंके कान फूटकर 'इअर-नोज़-थ्रोट स्पैशलिस्ट'के यहाँ क्यू लगने लगे। कहीं-कहीं तो चिल्लाते-चिल्लाते मेरा गला तक बैठ गया है। फिर भी मैं बोलता रहता हूँ। न समय देखता हूँ न स्थान, न विद्यार्थीका लिहाज़ करता हूँ, न बीमार पड़ोसीका, और न ही यह देखता हूँ कि किस समय और क्या बोलता हूँ क्योंकि लोगोंका मनोरंजन करना मेरा धर्म है और बोलने-का मेरे पास 'लाइसेंस' है। पर जो वास्तवमें मैं कहना चाहता हूँ वह कह नहीं पाता, जैसा कि बोलना चाहिए; बोल नहीं पाता, मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों होता है, क्या इसलिए कि मैं परावलम्बी हूँ, पर वह तो मेरी विवशता है।

मेरा जीवन भी एक करुण कहानी है। जो मुझपर गुज़री है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। शायद मेरा बोलना ही मेरे लिए अभिशाप बन गया है जिसके कारण मैं परतन्त्र हूँ और हमेशा रहूँगा।

कहते हैं पुराने ज़मानेमें मालिकके विरुद्ध कोई आवाज़ उठाता था तो उसकी ज़बान तलवारसे काट ली जाती थी। गणतन्त्रवादी युगमें ज़बान ज़बानसे काटी जाती है। क्योंकि यह युग ही केवल मात्र ज़बान-का है या कहिए ज़बानी युग है, लेकिन मैंने ऐसी कोई भी बात नहीं कही, फिर भी मैं सदा वहीं हूँ और हर बार मुझसे कान उमेठकर ही बुलवाया जाता है।

वैसे मेरा नाम 'आकाशवाणी' होनेके नाते और मेरी वायु-शिराएँ सर्वव्यापी होनेके कारण मुझे नभाकांक्षी पर पृथ्वीपर विचरण करनेवाली गन्धर्वबालाओं और किन्नरोंकी लीलाओंका भी थोड़ा-बहुत आभास मिलता रहता है। जब कोई किन्नरी मेरे सम्मुख आकर बैठती है तो मैं सूक्ष्म रूप धारण करके उसके धड़कते हृदयमें उतर जाता हूँ, लेकिन फिर

भी मुझे पता नहीं लग पाता कि यह सुमुखि अपने अनिमन्त्रित स्वरमें बाबा आदमके ज़मानेकी कोई चीज़ अलापनेका जो निरर्थक प्रयत्न कर रही है वह क्यों ? वैसे कई विख्यात महानुभाव, कई गले और बेगले-वाले कवि, कई बहुरूपिए नट, कई रीतिकालीन नायिकाओंके सदृश छलना, ललना-कलाकारोंसे मेरा नित्य ही साक्षात्कार होता रहता है और मैं सोचता हूँ कि काश मैं रेडियो न होता, ठण्डी-गरम साँसोंसे, हृदयके उद्गारोंसे, चटक-मटककर नाज़-नखरोंसे, नाम, ख्याति, पहुँच, सिफ़ारिश-से मेरा कोई सम्बन्ध न होता। क्योंकि मेरा शरीर काठका और हृदय लोहेका होते हुए भी शीशे-सा नाज़ुक है, जिसमें विद्युत्मय स्पन्दन है, अनुभूति है और इसीलिए कई बार मेरे अबोल हृदयमें इन सब बातोंके कारण एक टीस-सी उठा करती है। वैसे एक सच्चे समालोचकके नाते मैं किसीका नाम नहीं लेना चाहता। न ही यह बताना चाहता हूँ कि अमुक व्यक्ति मेरे सामने अलापने, नाचने-बोलने या रोनेके लिए बार-बार क्यों आता है, फिर भी मुझे एक बातका खेद है।

जैसा कि आप जानते हैं, स्वतन्त्रता-प्राप्तिके उपरान्त सौन्दर्य-प्रति-योगिता, क्रिकेटके मैच, 'अमेरिकन फ़्री स्टाइलके बाउट', औद्योगिक तथा रेलवे नुमाइशें, कहानी प्रतियोगिता आदि अन्तर्राष्ट्रीय आयोजनोंकी भाँति मेरे-द्वारा भी कुछ कालसे कवि-सम्मेलनोंका आयोजन होने लगा है। पर उनमें केवल मात्र लब्धप्रतिष्ठ कवियोंको ही आमन्त्रित किया जाता है जिनकी बड़ी पूँछ होती है। बेचारे उदीयमान कवि तो बिना पूँछके होनेके कारण सदा उपेक्षित ही रह जाते हैं। मैं स्वभावसे मानव-वादी हूँ। इस-लिए मुझे यह बात अखरती है पर क्या करूँ – मेरे कान चालकोंके हाथ-में होनेके कारण कह कुछ नहीं सकता, और अब तो एक रेडियो-पत्रिका भी प्रसारित होने लगी है लेकिन उसमें भी उन्हीं लेखकोंकी नामावली विद्यमान है। मानो वह लेखक-मण्डली अपनेमें एक सीमा है जिसके बाहर कुछ है ही नहीं। जब यह सोचता हूँ तो सहसा मेरे अन्तर्चक्षुओंके सामने

उन मासूम निरुत्साहित तरुण लेखकोंकी शक्लें घूमने लगती हैं जो मुझ तक पहुँच न होनेके कारण मुझसे कोसों दूर हैं और भविष्यमें भी उनके पास आनेकी कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती।

यह मेरी कहानीका एक बिन्दुमात्र है। अतः इसे पूर्ण न समझें और साथ ही इसे 'आकाशवाणी'का प्रोग्राम भी न समझ बैठें।

कौओंकी मीटिंग

आदिम मनुष्यमें मीटिंग-जैसी बीमारीके कीटाणु नहीं थे। सर्वप्रथम सभ्यताके युगमें आकर 'मन्त्रणा' शब्दका प्रयोग सुननेमें आया, लेकिन मन्त्रणा राजा तथा उसके मन्त्रियों तक ही सीमित थी, पर आधुनिक युगमें आकर उसकी वह काया-पलट हुई कि वह आज 'मीटिंग' नामसे शासन और समाज-व्यवस्थामें एक ऐसी 'मास्टर की' (गुरु कुंजी) बन गयी है जिससे न केवल बड़े-बड़े अलीगढ़ी ताले खोले जाते हैं बल्कि पेचीदा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंकी जटिल गिठाएँ भी खोली जाती हैं। गणतन्त्रके अन्तर्गत मीटिंगका इतना प्रचार हुआ कि मनुष्यको छोड़ पक्षी भी अपनी घरेलू और जातीय समस्याओंका हल मीटिंग-द्वारा निकालनेके आदी हो गये हैं।

मनुष्यकी मीटिंगका समय चौबीस घण्टोंमें किसी भी समय और किसी भी स्थानपर हो सकता है। चाहे वह इम्पीरियल होटलके विशाल सभाकक्षमें हो, चाहे इण्डिया गेटकी हरी घासपर, चाहे गान्धी ग्राउण्डमें उखड़ी घास और उड़ती हुई धूलपर। यह तो रही बड़ी-बड़ी और बड़े-बड़े लोगोंकी मीटिंगकी बात, पर बाबू लोगोंकी मीटिंग दफ़्तरके बाहर या भीतर एक प्याला चाय और एक समोसेपर, जमादारोंकी म्युनिसिपल हालके सामने, दूधवालोंकी दूध बेचते जाते समय रास्तेमें एक ओर लगे हुए नलपर, कुँजड़िनोंकी सब्ज़ी मण्डीमें, मुण्डुओंकी रातको कामसे फ़ारिग़ होकर 'फ़ुटपाथ'पर बिजलीके खम्भेके नीचे एक जोड़ा ताशपर और किसी

स्त्रीके उसकी पड़ोसिनके दरवाज़ेके सामने कचरा डालनेपर परस्पर पुरखा-पुरखा तकका नामोच्चारण आरम्भ हो जाये और दो-चार पड़ोसी और दस-पाँच राह चलनेवाले उनके मर्मज्ञ पैंतरोंको देखनेके लिए रुक जायें और इस तरह गलीमें एक अच्छी-ख़ासी मीटिंग होने लगे तो ताज्जुब नहीं।

पढ़े-लिखे आदमियोंकी मीटिंग आपने देखी होगी और उसमें सभी लोगोंको एक साथ बोलते हुए देखकर आपको सब्ज़ी मण्डीका आभास-सा होने लगा हो तो वह भी सम्भव है, सार्वजनिक टट्टियाँ बनवाने या कूड़ा उठाकर फेंकवाने या फिर कर्मचारियोंका रुपये-दो रुपये वेतन बढ़ानेके लिए जो दफ़्तरी मीटिंगें होती हैं, उनसे भी आप परिचित हैं और इतने परिचित जितने स्वयं अपने-आपसे भी न होंगे। लेकिन पक्षियोंकी और उनमें भी ख़ासतौरपर कौओंकी मीटिंग देखनेका शायद आपको सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा। हुआ भी होगा तो आपने उसे दुर्भाग्य समझकर छोड़ दिया होगा। रज़ाईमें दुबके हुए या फिर गरमियोंमें ठण्डी-ठण्डी हवामें बढ़ती हुई सुस्तीके कारण करवट बदलते हुए आपने कौओंकी 'काँव-काँव' सुनकर उन्हें कोसा हो तो आपने मानव-स्वभावके प्रतिकूल कोई काम नहीं किया। या आँगनमें लगे हुए पीपल, नीम या और किसी पेड़पर एकत्र कौओंको ताली बजा-बजाकर उड़ानेपर भी न उड़ते हुए देखकर ग़ुस्सेमें यह भूल गये हों कि आप आदमी हैं और कुछ क्षणोंके लिए आप भी उन्हींकी बिरादरीमें जा मिले हों तो भी आश्चर्यकी बात नहीं। तात्पर्य यह कि आपने गौतम बुद्धके वंशज होकर और राष्ट्रपितासे परोपकार और प्रीतिके सिद्धान्तकी सीख लेकर भी इन बिचारे समस्या-ग्रस्त कौओंसे सहानुभूति नहीं दिखलायी। वैसे तो शायद आप नित्य चींटियोंको खोजकर इस राशनके युगमें भी आटे और खाँड़का मिक्श्चर डॉक्टरकी ख़ुराक़की भाँति रोज़ सुबह-शाम उन्हें देते होंगे और एक अहिंसक होनेके नाते दो व्यक्तियोंकी हाथापाई देखकर पिटते हुए व्यक्तिको अलग हटा उसे ग़म खानेका उपदेश देते हुए शानसे सिर उठाये एक तरफ़

चल देते होंगे। इतना ही नहीं, आप किसी हरिजनको मन्दिरमें घुसते हुए देखकर या किसी तितलीके होठोंकी लाली और चुन्नीसे झाँकते हुए शरीरका उभार देखकर 'अंगूर खट्टे हैं' वाले भावको एकदम नाभि तक दबाकर ऊपरसे राम-रामका उच्चारण करते हुए सारी बुराई कलियुगके मत्थे मढ़ने लगते होंगे, लेकिन.......

हाँ, तो बात कह रहा था कौओंकी मीटिंगकी और बहकने लगा दूसरी ही ओर। इसमें मेरा भी दोष नहीं क्योंकि मैं एक स्वतन्त्र नागरिक हूँ और अभी मेरे दिमाग़में वह दृश्य भी ताज़ा है जो मैंने १२ सितम्बर १९४७ को दिल्ली स्टेशनके प्लेटफॉर्म नं० ३ पर – जहाँ फ़िरोज़पुर जानेवाली गाड़ी खड़ी थी – देखा था। बात यह थी कि एक महानुभाव टी० टी० आई० से झगड़ रहे थे। पूछनेपर पता चला कि झगड़नेवाले महानुभाव, जिन्हें २९ रोज़ बाद आज पता चला कि भारत आज़ाद हो गया है, फ़िरोज़पुर जा रहे थे। इंजनसे गार्डके डिब्बे तक गाड़ी देख डाली, लेकिन एक फ़र्स्ट क्लासके डिब्बेको छोड़कर अन्य सभी डिब्बे खचाखच भरे हुए थे जैसे किसी खानसामेकी साइकिलपर लटके हुए टोकरेमें चीं-चीं करते उलटे-सीधे मुरग़े भरे हों। जब कुछ समझमें न आया तो वह जाकर उस फ़र्स्ट क्लासके डिब्बेमें इत्मीनानसे बैठ गये और वहाँ उन्होंने अपना सामान नीचेवाली सीटोंपर इस प्रकार फैला दिया जिससे कोई और आकर न बैठ पाये। दूर खड़ा टी० टी० आई० यह तमाशा देख रहा था। जब वह टिकिट देखने आया तो भाई अकड़ पड़े। किस बातका टिकिट? अब भी सरकारकी गाड़ी समझ बैठे हो? देखते नहीं हम यहाँ पहले आकर बैठ गये हैं। हम आज़ाद हैं, अब वह अँगरेज़ोंका ज़माना भूल जाओ, बाबूजी! टी० टी० आई० ने बहुत समझाया, उनकी दाढ़ीको हाथ लगाया लेकिन जब वह अपनी स्वतन्त्रतापर अड़े रहे और उन्होंने किराया देनेसे इनकार कर दिया तब उन्हें लाल पगड़ी और ख़ाक़ी वरदी-की मदद लेकर नीचे उतारा गया। मतलब यह कि अभी थोड़े ही वर्ष

पूर्व स्वतन्त्रता पानेके कारण हमें अभी कुछ काल तक 'नाथ' की ज़रूरत है फिर चाहे 'नाथ' रस्सोंकी हो या प्राणनाथ, कुटुम्बनाथ, समाजनाथ या राष्ट्रनाथके रूपमें हो।

यदि मैं कहूँ कि इस दृष्टिसे हम कौओंसे भी गये बीते हैं तो बुरा न मानिए क्योंकि कौए कई बातोंमें हम मनुष्योंसे अच्छे हैं। हम आलसमें बिस्तर ही में आठ बजा देते हैं और इसपर अगर बिस्तरमें चाय समयपर न मिले तो सुबह-सुबह बीवीसे नोंक-झोंक शुरू हो जाती है जिसके फल-स्वरूप सारा दिन भूखे रहना पड़ता है। लेकिन कौआ अरुणोदयसे पहले ही पेड़की टहनीपर चोंच साफ़ करके भैरवी अलापना आरम्भ कर देता है। फिर सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि वह अपनी सती-साध्वी पत्नीसे झगड़ता नहीं देखा गया। जब दोनों साथ दिखाई देते हैं तो प्यार करते हुए फिर कौए महाशय या श्रीमती कौई क्षण-भरके लिए भी एक-दूसरेको छोड़नेके लिए तैयार नहीं। बाबू साहब या बबुआइनकी भाँति नहीं कि मियाँ तो रूखी-सूखी तन्दूरकी रोटी और सरसोंका उबला बासी साग खाकर डालडाका स्वाद लेते जल्दी-जल्दी बिना पैडल और फटीचर गद्दी-वाली साइकिलको हवाई जहाज़ बनाये उतरते-चढ़ते दफ़्तरकी चारदीवारी-में दाखिल हो गये और बबुआइन बन-ठनकर चेहरेपर पाउडर मलकर होठोंपर सुरखी लगाये आँखोंमें कालिख पोते और किसी फ़िल्म एक्ट्रेस-वाली चाल-ढालसे बाज़ार या सिनेमा चल दीं। शामको बाबू साहब थके-माँदे अधिकारियोंकी घुड़की खाये, दफ़्तरी दुनियाको कोसते हुए, भाग्यपर खीझते हुए घर लौटे तो बेगम साहिबा मैली-कुचैली धोती पहने; माथेपर शिकन डाले स्वागतके लिए पहलेसे ही तैयार! बाबू साहब आकर धबसे खाट या कुरसीपर बैठे-न-बैठे कि बेगमने त्यौरियाँ चढ़ाकर नाक बहते हुए अपने बच्चेको दो चाँटे रसीद करके उनके सामने पटककर अपने भाग्यको, फिर अपने माँ-बापको और फिर बाबू साहबके घरको जिसमें नौकरानी-सा सब काम करना पड़ता है, कोसना शुरू कर दिया।

इसपर अगर आँसू निकल पड़े तो वह भारतीय नारीके आभूषण हैं जिनके कारण गुप्तजीको 'साकेत'-जैसे महाकाव्यकी रचना करनी पड़ी। लेकिन कौआ और कौईमें यह बात नहीं है। यह तो जहाँ रहेंगे वहाँ साथ-साथ। समानाधिकार माँगनेके लिए कोई 'कौई मण्डल' अथवा 'कौई लीग' की स्थापना करके कौओंको नहीं ललकारती। यहाँतक कि प्रसवके बाद बच्चोंकी देख-भाल कौआ-कौई मिलकर करते हैं। उनमें मियाँ-बीवीकी भाँति बच्चोंको लेकर तड़प-झड़प नहीं होती।

पुरुषमें स्त्रीके प्रति वीरताका भाव होता है। क्योंकि सभ्यताकी आड़में अपनी स्त्रीके अतिरिक्त उसे अन्य स्त्रियोंमें भी दिलचस्पी रहती है। पर कौआ इस मामलेमें एकदम रामके एक पत्नीव्रतका अनुयायी है। फिर भी उसमें पौरुष सुलभ यह प्रवृत्ति होती ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जब कोई दक्ष कौआ किसी मनचलेकी भाँति कनॉट प्लेसका स्वप्न देखता किसी अन्य कौएकी पत्नीसे प्रेमालाप करने फुदकता हुआ आता है तब बीसवीं शताब्दीके सभ्य तथा प्रोत्साहनमूलक नारी-प्राधान्य जगमें रहते हुए भी पाश्चात्त्य सभ्यतासे प्रभावित न होनेके कारण उसका पति अपने समस्त बलका प्रयोग करके मरने-मारनेपर उतारू हो जाता है।

अब मीटिंगकी सुनिए। गणतन्त्रमें मानव-समाजके सभी कार्य-भारोंको सँभालनेके लिए मीटिंगकी आवश्यकता हुई तो इतनी कि उसने टी० बी० के बुख़ारकी भाँति नियमित रूप और निश्चित समय ग्रहण कर लिया। ज़ुकामकी भाँति वह चाहे जब नहीं होती, और मेहमानकी भाँति बिना ख़बर दिये भी नहीं आ टपकती। कई मीटिंगोंका दौरा महीनेमें एक बार या फिर हफ़्तेमें एक बार नियत समयसे होता है। मीटिंगमें उन सभी समस्याओंपर विचार किया जाता है जिनपर गणतन्त्र या प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोंकी पाबन्दीके कारण कोई भी एक व्यक्ति अकेला विचार नहीं कर सकता, कर भी सकता है तो कमसे कम खानापूरी करनेके लिए

मीटिंग बुलाना आवश्यक हो जाता है।

कौओंकी भी कुछ समस्याएँ हैं जिनपर विचार करनेके लिए उन्हें पूर्ण रूपसे तैयारी करनी पड़ती है। वैसे तो छोटी-मोटी बातोंके लिए रोज़ सुबह-शाम किसी ऊँचे-से छायादार पेड़पर मीटिंग हुआ करती है और उन मीटिंगोंके रोज़-रोज़ होनेका कारण भी मनुष्य-सा ही स्वाभाविक है। जब सिरधारी मनुष्यकी कोई एक समस्या किसी भी एक मीटिंगमें हल न हो पाती तो भला दुमधारी कौए तो फिर कौए ही हैं! इसीलिए जब सर्वप्रथम ईश्वरने कौओंका किसी अन्धेरी रातमें निर्माण किया तो अपने काले रंग और कर्ण-मधुर काँव-काँवपर शायद उन्हें कुछ इतराज़ रहा हो। अतः सब कौओंने मिलकर ईश्वरके पास डेपुटेशन भेजनेके लिए एक मीटिंग बुलायी पर जब अपना-अपना मत प्रकट करनेका समय आया तो कोई भी धैर्यसे दूसरेको सुनने-समझनेवाला न था। परिणाम यह हुआ कि सभी कौए चारों ओरसे काँव-काँव करने लगे। बस तभीसे कौओंकी यह सुबह-शामकी मीटिंगकी परम्परा चली आ रही है और किसी निर्णयपर न पहुँचनेके अनन्त काल तक चलती रहेगी।

इन दैनिक मीटिंगोंके अतिरिक्त मानव जीवनकी भाँति कौआ-जीवनमें भी कुछ ऐसी घटनाएँ जनखोंकी भाँति बलखाती धरना देने आ जाती हैं जिनसे निपटारा पानेके लिए आकस्मिक मीटिंग बुलाना आवश्यक हो जाता है।

एक समयकी बात है। सुबह साढ़े पाँच बजेके लगभग मैं लोदी गार्डन-की ओर घूमने जा रहा था। रास्तेमें एक नीमका विशालकाय और शीतल-च्छाय पेड़ है। उसीपर कौओंकी एक आकस्मिक मीटिंग हो रही थी। आकस्मिक इसलिए कि प्रायः सभी कौए घबराये हुए काँव-काँवकी कातर पुकार दूर-दूर तक पहुँचा, इधर-उधर उड़कर अन्य कौओंको बुलाकर फिर पेड़पर आ बैठते थे। कौओंकी यह धाँधलेबाज़ी देखकर मैंने समझा कि मीटिंगमें अभी देर है। क्योंकि समयकी पाबन्दीके मामलेमें कौए भी तो

हिन्दुस्तानी ही साबित होंगे और इसलिए बहुत मुमकिन है कि सदस्य कौए निश्चित समयपर न पहुँच पायें। पेड़से थोड़ी दूर हटकर मैं पुलिया-पर बैठ गया। कौओंका जमाव बढ़ रहा था। दूर-दूरसे आकर कौए उस नीम-भवनमें एकत्र हो रहे थे। मीटिंगका 'एजेण्डा' क्या था यह मेरी समझमें न आया, पर समस्त परिस्थितिका अध्ययन करके मैंने जो पता लगाया वह यह था कि जिस पेड़पर मीटिंग हो रही थी, उसकी फुनगीपर किसी कौए महाशयकी पर्णकुटी थी जो उन्होंने बड़ी मेहनतसे बिना ब्लैक मार्केटकी कमाई लगाये बनायी थी। लेकिन अब जब श्रीमती कौईको बच्चा होनेवाला था, गार्डनके अधिकारियोंमें-से किसीका आदेश पाकर मालीने उस पेड़की दो-चार टहनियाँ काट डालीं जिससे वह नीमका पेड़ किसी मोटे व्यापारी लाला, साहु या सेठकी भाँति छोटे-छोटे स्वजातीय व्यापारियोंकी बढ़तीमें एकदम पूर्ण विराम न बन जाये। कौई बेचारी जो प्रसव-वेदनासे पीड़ित 'सेण्टर' की नर्सके यहाँ मेहमान आ जानेके कारण घोंसलेमें अकेली दुबकी बैठी थी, यह दृश्य देखकर इस बुरी तरहसे चिल्लायी कि कोई महाशय जो दूर किसी क्वार्टरकी छतपर बैठे गरदन टेढ़ी-मेढ़ी करके छतपर सूखनेके लिए फैलायी हुई कचहरियोंपर धावा बोलनेके लिए अँगरेज़ी पैंतरा बदल रहे थे, कौईकी कातर पुकार सुनकर फड़फड़ाकर भागे और मियाँ बीवीने मिलकर 'काँव-काँव' 'आँव-आँव'की वह रट लगायी कि बिना तारके तारसे ही सब कौओं तक भय-सूचना पहुँच गयी और कौओंकी अखिल भारतीय नहीं तो अखिल लोदी-रोडीय सभा उस पेड़पर बैठी। सभापति कौन बनाया गया यह नहीं कह सकता, पर इतना अवश्य याद है कि जो कौआ 'झगड़ालू' और सबसे अधिक बोलने-वाला यानी 'मेरी मुरगीकी तीन टाँग' की रट लगानेवाला था, अन्तमें वही सभापतिके स्थानपर आसीन हुआ। सभाके सम्मुख जो सर्वप्रथम प्रश्न रखा गया और जो मैं समझ पाया वह था सरकारकी पेड़ोंकी काँट-छाँटवाली नीतिपर विचार करना और माली वर्गका बिना सरकारी

आज्ञाके चुराकर पेड़ोंकी टहनियाँ काटकर तथा उन्हें अधिकारियोंकी नज़रसे बचानेके लिए झाड़ियोंके पीछे सुखाकर ईंधनका काम चलाना जिसके कारण पेड़ उजाड़ हो जानेसे 'कौईस्तान' ख़तरेमें होनेकी सम्भावना थी।

दूसरा प्रश्न सभाके सम्मुख, जो एक फुदकते हुए कौएने, जिसे खाद्य-सम्बन्धी विदेशी जानकारी हासिल थी, रखा वह था — सड़े-गले मांसका सड़कपर न फेंके जानेका नगरपालिकाकी ओरसे मांस-विक्रेताओंको आदेश। नगरपालिकाका कहना था कि ऐसा करनेसे कचरेके डिब्बोंकी मक्खियाँ उड़-उड़कर उनपर जा बैठती हैं जिनसे सारे शहरमें बीमारी फैल जाती है। नगरपालिकाकी इस नीतिसे कौओंकी खाद्य स्थितिको ख़ासा धक्का लगा था। इसपर सदस्योंमें इतना वाद-विवाद चला कि समस्त विषय ही हिन्दू कोड बिल बन गया। सभी कौओंके एक साथ मत प्रकट करनेके कारण वह नीमका पेड़ एक अच्छा खासा रामलीला ग्राउण्ड बन गया। अन्तर इतना ही था कि वहाँ औरतोंको धक्के खाने पड़ते हैं पर यहाँ कौई वर्गकी प्रतिष्ठा सुरक्षित थी। सभाकी अव्यवस्था, कौओंका उतावलापन, अनुशासनका अभाव और साधारण शिष्टाचार-हीनता देखकर मैंने सोचा — काश मैं कौआ होता। तो इन कौओंका नये सिरेसे संगठन करके उन्हें गणतन्त्रके वास्तविक सिद्धान्तोंके अनुसार सभा आदिका संचालन करना सिखाता। लेकिन काश! और काशका विचार मनमें आते ही मुझे एक कविता याद आयी 'काश कि मैं पत्थर होता' और विचारोंका ताँता बँध गया, फूल होता, लिपस्टिक होता, छोटा-सा मख़मली सैण्डल होता, रूमाल होता, हैण्डबैग होता और न जाने क्या-क्या होता और क्या-क्या न होता; और मान भी लिया जाये कि यदि मैं कौआ होता तो क्या होता? कौओंको आदमी बना पाता और फिर कौए आदमी बन भी जाते तो सृष्टिकी कमीकी पूर्ति करनेके लिए मनुष्यको कौआ बनना पड़ता, फिर चाहे मनुष्य अपनी विशेषताओंके कारण सफ़ेद कौआ बनता या सिर-

पर एक सफ़ेद दुम लगा लेता जिससे साधारण कौएसे मानवी कौए पहचा-ननेमें सुभीता हो और वैसे देखा जाये तो इस वर्गीकरणकी भी कोई आव-श्यकता नहीं है। क्योंकि'शक्ल-सूरतसे कौए-जैसा न दिखाई देनेपर भी मनुष्य कौआ हो सकता है क्योंकि अब तो विज्ञानने भी प्रमाणित कर दिया है कि कोई भी वस्तु जैसी दिखाई देती है उसका वही रूप नहीं होता। अतः आप मनुष्य होते हुए भी कभी कौए प्रमाणित हो जायें तो आपको आश्चर्य न होना चाहिए, या मनुष्योंकी मीटिंग कौओंकी मीटिंग-सी जान पड़े या वास्तविकतामें ठीक वैसी ही हो तो भी चकित होनेकी बात नहीं

बिमोल दादा : एक सन्तुलन

मुतवातर नौ इतवारोंका बोझा सिरपर लादे देवीजीकी अविराम लताड़ोंके बावजूद मैं सिर खुजाता हुआ चारपाईपर सीधा लेटा तो कई उलटे विचार मेरे मस्तिष्कमें दाखिल होने लगे। 'बच्चन'के गीत 'त्राहि-त्राहिपर उठता जीवन'से अनभिज्ञ अपने बालोंको अपनी ही उँगलियोंसे सहलाता मैं सोचने लगा कि हाइड्रोजन बमके विषयमें उदासीन ब्रह्म-अण्डके अण्डासनपर आसीन भगवान्ने अपने लिए तो नाना साफ़-सुथरा मुखारविन्द लिया, पर बेचारे मरदोंके मत्थे सिरसे ठोड़ी तक बाल मढ़ दिये। (यह मैं फ़ोटो-देखी बात कह रहा हूँ। क्योंकि ब्रह्मा, अग्नि और यत्र-तत्र भोले बाबाके सिवा देवताओंको नारी और पुरुषके सम्मिलित रूपमें ही चित्रोंमें अंकित किया गया है) इसका कारण या तो पुरुष कलाकारोंकी नारीत्वके प्रति आसक्ति होगी या फिर देवियोंके निरन्तर अनुरोध और डाँट-डपटके फलस्वरूप वैकुण्ठ-कैलासमें 'रजनीके पिछले पहरोंमें' 'भारत ब्लेड' चलता होगा अथवा देवताओंको कोई ऐसा कैमीकल-फ़ॉर्मूला पता होगा जो बाल-सफ़ासे भी अधिक चमत्कारी होगा।

भगवान्की याद आते ही मेरी जड़ उँगलियोंके नीचे चेतनता बिल-बिलाने लगी। उँगलियोंकी नोककी पकड़में जो कुछ आया वह इतना नगण्य था कि उसके लिए मैंने सिर खुजाते हुए भी सिर खुजानेकी ज़रूरत नहीं समझी, क्योंकि घरकी सबलाकी डिक्टेटरशिपमें उस छोटे-से अस्तित्वके लिए डेमोक्रेसीके नामपर पर्याप्त स्थान होते हुए भी महत्त्व नहीं था और

चूँकि एक प्रतिष्ठित घरवालेके नाते मैं उनकी धारणाओंके बाहर नहीं हूँ, मेरे लिए उस ओर दुर्लक्ष करना ही श्रेयस्कर था।

हाँ, तो बाल कटवानेका विचार करते-करते सॉयकोलॉजीके तत्त्वकी दुहाई दे-देकर विषयान्तरकारी किसी बहुश्रुत और अँगरेज़ीमें पैरका अँगूठा अड़ाये हुए किसी स्वयंसिद्ध, स्वयम्भू देशी लेखककी भाँति मैं बालोंको छोड़ ब्रह्म और अण्डके संजोगसे बने हुए 'ब्रह्माण्ड'पर सोचने लगा। स्वाभाविक था कि मेरे अण्डाकार चिकने मस्तिष्कको मुर्ग़ीके अण्डेसे लेकर 'इस्कूल'में पाण्डे साहब-द्वारा हिसाबमें दिया हुआ अण्डा और उसके फलस्वरूप घर-पर पीठपर खाया हुआ डण्डा याद आता, मुझे लगा जैसे इस सृष्टिके सभी व्यापार अण्डमय हैं – मिथ्या है, दुनियाका आरम्भ और अन्त दोनों अण्डा हैं। जब दोनों अण्डा ही हैं तो योगफल क्या हुआ ? अमीर ख़ुसराकी मुकरियोंके लहज़ेमें आप लपककर झटसे कहेंगे 'अण्डा'। पर विज्ञान बताता है और दुनिया जानती है कि दो तत्त्वोंके संयोगसे तीसरी वस्तु निर्मित होती है। वरना पंचभूतोंसे आदमी कैसे बनता और हम सब मिलाकर घरमें तीन जने कैसे होते। मस्तिष्कमें इस सत्यका प्रकाश पड़ते ही नाईके उस्तरे और अपने बालोंका परस्पर सम्बन्ध मेरी समझमें आ गया। जिसे बेगम मुतवातर चार हफ़्तोंसे समझानेमें ज़मीन खोदे हुए थीं। नाईके उस्तरेकी पैनी धार और हिन्दीके सुकोमल कवि पन्तकी 'बाला' जनित बाल मेरे 'मृदुमन्द कोमल लोल तन्द्रिल कमनीय नयन'के सामने मधुर-मधुर थिरकने लगे और मैं दोनों हाथोंसे तकिएको सीनेसे चिपकाये उस कल्पना-लोककी स्वप्निल बालाके लावण्यके सम्मोहन-जालमें तरल होकर ऊँघने लगा।

सुबह उठा तो मेरा अचेतन मन (वैसे मेरा नाम चेता होनेके बावजूद चंचलाकी अम्मा मुझे सुहागरातसे लेकर आज दक्षिण दिल्ली नगर-पालिकामें चंचलाका जनक दर्ज़ होनेपर भी अचेता ही कहती हैं) तय कर चुका था कि मेरे बाँसके जंगलोंसे घने और मेरे अज़ीज़ फ़तेहसिंहकी कीऊ-

ट्रीटेड दाढ़ीकी भाँति चिक्कन निराकार बालोंको कुछ आकार मिलना चाहिए। क्योंकि निराकारकी उपासना करते हुए भी साकार शक्तिसे चौबीस घण्टेका साक्षात्कार भुलाया नहीं जा सकता। मैंने उलटे हाथोंसे आँखें मलते हुए स्लीपरोंमें चरण-कमल अटकाये और नीचे बाज़ारमें मास्टर नन्नेके सैलूनमें दाख़िल हो गया। नन्नेका सैलून किसी भी बॉम्बे रिटर्न नाईके सैलूनकी भाँति था। मसलन उनका अपना एक फुल-साइज़-का फ़ोटो घुटनोंपर दोनों हाथ जमायेवाली पोज़में दीवारपर टँगा था। नन्नेका पोज़ किसी भी फ़िल्मी एक्टरसे कम न था, ज्यादा हो तो कह नहीं सकता, क्योंकि इस बातका फ़ैसला करनेके लिए मुझे मैट्रिकमें अटके हुए सिनेमा-विशेषज्ञ एवं जनरल नॉलेजमें पटु अपने छोटे भाई साहबको तलब करना पड़ेगा। फ़ोटोमें 'डिग्निटी ऑव लेबर' इतनी अधिक थी मानो मास्टर नन्ने जता रहे हों कि केवल 'नन्ने नाऊ'की ही जाति ऐसी है जो सन्त्रीसे लेकर मन्त्री तककी हजामत कर सकती है। उस फ़ोटोको देखकर मुझे लगा कि सिर्फ़ कविका ही काम ऐसा है जो न तो डिग्निटीमें आता है और न लेबरमें कहा जाता है, क्योंकि 'उमड़कर आँखोंसे चुपचाप बही होगी कविता अनजान' और 'मैं रोया तुम कहते हो गाना, मैं फूट पड़ा तुम कहते छन्द बनाना'के अनुसार काव्यकी सर्जनाके लिए लेबर नहीं करनी पड़ी। केवल नज़ला होनेसे भी कविता उमड़ सकती है। अन्य दीवारोंपर अँगरेजी कट, फ्रेंच कट, जर्मन कट, लेनिन कट आदि कटोंके चौखटे जुड़े हुए थे। कटोंके उन मुण्डकटोंको देखकर कमसे कम मुझ-जैसेके लिए श्रीमतीजीकी ग़ैरहाज़िरीमें कौन-सा कट करवाया जाये, यह तय करना असम्भव था। दूकानमें कुछ 'पतली कमरिया, तिरछी नज़रिया'की भी तसवीरें थीं, जिन्हें देखकर किसी भी मनचलेका मन परकटे कबूतरकी भाँति फड़फड़ाये बिना न रहता। इस माहौलमें भला नन्ने भाई रेडियोको कैसे भूल सकते थे? अतः उसका होना उतना ही ज़रूरी था जितना किसी फंक्शनके उद्घाटनके लिए मिनिस्टरका होना और वह एक कोनेमें

दीवारपर चढ़ा 'सूर-सूर तुलसी ससी, उडगन केसवदास। अबके कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास' वाले राजधानीके सूरमा कलाकारोंको प्रकाशित करनेके लिए बुरी तरह गला फाड़ रहा था।

दूकानमें ग्राहकोंकी संख्या अधिक होनेके कारण मैं अपना नम्बर लगाये बिना ही अनम्बरित कुरसीपर बैठ गया। सामने बिखरे हुए अख़-बारमें छपे बाबूजीके व्यंग्य-चित्रसे अपना तादात्म्य स्थापित करता हुआ मैं मास्टर नन्नेकी करामात ध्यानसे देखने लगा। कलाकार नन्ने बल खाये, गरदन झुकाये, आँखे गड़ाये, देवीजीकी पैनी ज़बानकी तरह कटाकट-कटा-कट क़ैंची चलाकर बालोंको एडिट कर रहे थे। बड़ी लखनवी नज़ाकतसे ग्राहकके गाल मलकर और ठोढ़ीपर हाथ फेरकर हज़ामतको फिनिशिंग-टच् देकर नन्नेने अपना काम ख़त्म किया। कुरसी ख़ाली होते ही मैं अपने मित्र लालासिंहकी लटपटी चाल और अटपटे ढंगसे कुरसीपर लपककर बैठ गया। इतनेमें एक साहब जो नम्बरमें मुझसे पहले और बालोंकी बढ़ानमें मेरे आगे थे तथा अबतक बंकिमके किसी नॉवेलपर झुके पढ़नेके नामपर ऊँघ रहे थे, हड़बड़ाकर फट पड़े – "ना ना, बाबा। तुमि तो ख़ूब भालो लोक। आमी तोमार चेए आगे एशेछिलाम। हे भोगोबान। आमादेर कोलकाताय ए रकम होय ना।" इतना कहकर आँखें तरेरे सब्ज़ीवालेकी बहँगीकी तरह हचकोले खाते वे कुरसीकी ओर ततैया काटे-से बढ़े। उनके प्रचण्ड व्यक्तित्व, कन्धोंपर झूलते बाल और सीनेको चुभती दाढ़ीका गीदड़ावलोकन करते ही मुझे यक़ीन हो गया कि वाममार्गी यानी अपने बायें हाथ चलनेवाला मैं लाखासिंहके सीधे मरदाने ढंग इस्तेमाल करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। मैंने बग़लें झाँकते हुए सीट ख़ाली कर दी। मेरे वाक्वीर नायकको अपनी अनपेक्षित विजयपर गर्व हुआ होगा, क्योंकि वे कुरसीपर फँसकर बैठ गये थे और डाढ़ीपर हाथ फेरते हुए कोई बंगला गीत गुनगुनाने लगे थे। इधर मेरा मन उनके बालोंसे निकलकर डाढ़ीमें अटका कवीन्द्रको श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा था। इस एपिसोडमें मेरे

नारीय एप्रोचपर वे अवश्य आसक्त हुए होंगे, क्योंकि बाल कटवाते समय उन्होंने कई बार मुलायमियतसे मेरी ओर कनखियोंसे देखा था। अपने राम भी कुतूहलसे भरे बैठे थे, क्योंकि उनकी हुलियासे साफ़ दिखाई देता था कि वे भले ही रवीन्द्रकी कोटिके न हों, पर हैं अवश्य कोई महान् कलाकार, और चूँकि मैं बंगाली आर्टकी चेहरेको दो हिस्सोंमें विभाजित करनेवाली लम्बी आँखोंपर शुरूसे ही लट्टू हूँ, मेरे हृदयमें उनके प्रति अनायास ही धाक-मिश्रित औत्सुक्य उमड़ पड़ा। उनके बालोंका डील-डौल देखकर मैं समझा था कि उनके बाल काटनेमें नन्ने मियाँको काफ़ी देर लगेगी, पर लगभग दस मिनिटमें ही वे फारिग होकर उठ खड़े हुए। श्रीमतीजीके आदेशानुसार जहाँ मेरे नये उगे हुए बालोंकी जड़में उस्तरा चलानेके लिए पूरा आधा घण्टा लगता है वहाँ उनका दस मिनिटोंमें ही बाल कटवाना मेरी समझमें नहीं आया। बादमें मैंने जाना कि एक उच्च कलाकारकी लापरवाही प्रदर्शित करनेके लिए वे बाल कटवाकर भी नहीं कटवाते थे। आपको यक़ीन न हो तो दिल्ली रेडियोके किसी भी मरद आर्टिस्टको देख लीजिए, ढीला लखनवी पैजामा, लम्बा बंगाली कुरता, (सर्दी हुई तो जवाहर बास्केट) अस्त-व्यस्त बिखरे बाल, और किसी गहन दर्शनमें चढ़ी तन्द्रिल आँखें मेरे कथनकी पुष्टि करेंगी। बाल झाड़नेके लिए मेरे टाइगरकी तरह (टाइगर मेरे कुत्तेका नाम है) शरीर झाड़कर वे मेरी ओर बढ़े "क्षमा कीजिए, मुझे जल्दी थी, रेडियोकी नौकरी ही ऐसी है।" उन्होंने बड़ी नम्रतासे अँगरेजीमें बताया और ताम्बूलसिक्त होठोंको सिकोड़ा, फैलाया। मेरे मित्र रेडियोमें हैं यह जानकर मेरी तो बोलती ही बन्द हो गयी और मैं उन्हींकी बात दोहरा बैठा – "रेडियो-में हैं ?"

वे गरजे, "जी बंगालीमें ख़बरें सुनानेवाला बिमोलचन्द्र चट्टोपाध्याय मैं ही हूँ," उनके हाथपर अपनी पसीजी हथेली रखते हुए मैं हक-लाया, "बड़ी ख़ुशी हुई आपसे मिलकर बिमल दादा।" मुझे सुधारते

हुए उन्होंने कहा "बिमोल दादा।" बिमोलके 'औ' को हलन्त करके मैं अनजाने ही 'ओ' का अण्डा निगल गया था और वह मानो उनके हलक़में अटका मेरे उच्चारणको सुधार रहा था। अवसरको पकड़ने और अपनी धाक जमानेके लिए मैंने कहा, "मैं भी लेखक हूँ, बनारसीदास द्विवेदीके नीचे लिखता रहा हूँ। राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्तसे मैंने कविता सीखी है तथा 'पंचवटी' की "कटिके नीचे चिकुर जालमें उलझ रहा था बायाँ हाथ" उक्तिमें सौन्दर्यवादपर विद्यागुप्त चन्द्रालंकारके नीचे गढ़वाली पद्यमें रिसर्च कर रहा हूँ। हज़ारीप्रसाद चतुर्वेदीका शागिर्द हूँ, बुद्धेन्द्रकुमारके दर्शनपर मैंने पर्याप्त विचार किया है। बच्चनके साथ लगभग रोज़ चाय पीता हूँ, कोविन्ददासके नामसे नाटक लिखता हूँ और कुमित्रानन्दन पन्तके बालोंके लिए लोमा तेल मैं ही सप्लाई करता हूँ, फिर भी रेडियो-पर मेरी आवाज़ अभीतक चंचलाकी अम्माने नहीं सुनी। आप मेरी मदद करेंगे ?" — मैंने गिड़गिड़ाते हुए मुँहसे थूक उड़ाते हुए पूछा। मुझसे शामको मिलनेके लिए कहकर अपना पता बताते हुए उन्होंने सुँघनी चढ़ाते हुए बिदा ली और मैं रेडियोपर बोलनेके स्वप्नमें बड़बड़ाता हुआ ऐंठा-सा बाल कटवाने बैठ गया। दूकानमें लगे कटोंके अजायबघरको देखकर मैंने सोचा कि अबकी बार कोई कट कटवाया जाये, क्योंकि अब-तक मैं मुण्डन संस्कारकी रूढ़िका ही पालन करता आ रहा था। बचपनमें और लड़कोंकी देखा-देखी मैंने एक बार अयोध्यासिंहसे, जो हमारा खान-दानी नाई था तथा आजीवन देशी उस्तरेसे ही हजामत करता आ रहा था, अँगरेज़ी ढंगसे बाल काटनेको ज़िद अवश्य की थी, जिसके फलस्वरूप नाईके हाथकी चपत और बूढ़े दादा-द्वारा दी गयी माँकी गालीके बावजूद दरवाज़ेकी आड़से माताजीके बीचमें पड़नेके कारण मेरे सिरपर कौवा रख दिया गया था यानी सामने मुट्ठी-भर बाल छोड़कर बाक़ी सिरपर उस्तरा फेर दिया गया था। यह दूसरी बात है कि मैं उस दिन स्कूलमें लड़कोंके मनोरंजनका विषय बन गया और तंग आकर उसी दिन शामको

अपनी बड़ी बहनकी सहायतासे, जो मैंने पेड़से अमरूद तोड़कर ला देनेके बदलेमें गिड़गिड़ाकर प्राप्त की थी, और पिताजीकी मूँछें छाँटनेके लिए आलेमें रखी हुई क़ैंचीकी करामातसे वह कौवा साफ़ उड़ा गया था।

अँगरेज़ी बाल कटवानेके बाद घर पहुँचकर जो जवाब-तलबी आलोचन-विमोचन और पर्यायवाचन हुआ उसका हवाला श्रीमतीजीकी पुरानी साड़ीके परदेके पीछे ही रहने दीजिए।

शामको बन-सँवरकर बालोंको कड़वे तेलमें भिगोकर श्रीमतीजीकी बाल-गुम्फित कंघीसे बाल सँवारकर मलमलका निर्मल कुरता पहने बल खाता बिमोल दादाके शान्ति-कुटीरपर पहुँचा। कुटीर दर्भोंकी न होकर सीमेण्ट-कांक्रीटकी दुमंज़िला इमारत थी जिसपर इमरती-सी नक़्क़ाशीका काम था। कुटीरके सामनेके काननको देखकर तुलसीकी पुष्पवाटिकासे लेकर मुलगाँवकरके कनवर्टेड चित्रोंकी पर्वटेड पार्श्वभूमिका आभास होता था। कुटीरके ओसारेमें बाँसके चौकीनुमा चार आसन फैले हुए थे और कुशासनोंकी जगह उनपर स्नेह-मण्डित मड़ियाँ बिछी हुई थीं। धोतीधारियोंके लिए एक और तख्तपर मैली चाँदनी बिछी हुई थी और मसनद लगी हुई थी। सामनेवाली दीवारपर रवीन्द्रका पोर्ट्रेट लगा हुआ था। अन्य दीवारोंपर भी नृत्य-मुद्राओंमें अंगनाओंके साँग चित्र थे। कुटीरके सिंहद्वारपर यानी बाँसके छोटे-से फाटकपर पहुँचकर मैं काननमें हाथमें छोटी-सी बेंतकी टोकरी लिये पुष्प-चयन करती हुई महिलाको देखकर सहम गया। महिला ढाकाकी लाल किनारीकी सफ़ेद साड़ी पहने पुष्पचयन कर रही थीं। उनके महावरसे रँगे पद-विन्यासपर उनके आँचलके छोरमें बँधा चाबियोंका गुच्छा खनखनाकर पद-विन्यासमें घुँघरूका साथ देता-सा प्रतीत हो रहा था। उनकी पीठ मेरी ओर थी, अतः उन्हें निहारकर देखनेमें मैं एक सभ्य आदमीके औसानसे काम ले रहा था। तभी पड़ोसवाले मकानपर-से एक महाशयको अपनी ओर घूरते देखकर मेरे पैरोंके नीचेसे ज़मीन खिसक गयी और महिलाका मुखारविन्द अपनी ओर

मोड़नेके लिए मैंने खाँसकर सकुचाते हुए पूछा, "बिमोल दादा यहीं रहते हैं ?" महिलाने गलेमें आँचल डालकर सकारात्मक स्मित किया और कुटीरके मिलनकक्ष (ड्राईंग रूम) की ओर उन्मुख होकर "शोनो" कहकर पुकारा। उनका पुकारना था कि बिमोल दादा बरामदेमें अवतीर्ण हुए और मुझे देखते ही "एसो एसो दादा, की खबोर"का जयनाद करते हुए नाचते-से काननमें उतर आये। बड़ी हार्दिकतासे मेरी पीठपर हाथ रखते हुए उन्होंने महिलाकी ओर उन्मुख होकर मेरा परिचय कराया – "कोल्पोना, आमार स्त्री" और अपना ताम्बूल-सिक्त मुँह फाड़कर चौबीसों दाँत निपोरते हुए झटके-से शालको पृष्ठगामी किया।

मिलन-कक्षमें सुभाष, सुहास, अजय, सुनीता, आरती, बीना, मीना, रोजनीगन्धा और भारतीसे परिचय हुआ। ये सब बिमोल दादा और कोल्पोनाजीके सन् '४८ से लेकर '५७ तकके संस्करण थे। सन् '५८ का मॉडल डिक्लेअर होनेमें अभी कसर थी। भारती उनकी सबसे छोटी दुहिता थी। मीनाका गीत, बीनाकी वीणा, आरतीके चित्र और भारती-का नृत्य देखनेके बाद अजयकी चुनी हुई जंगली लकड़ियोंका प्रदर्शन हुआ। उन लकड़ियोंमें कुत्ते, बिल्ली आदिकी आकृतियोंका आरोपण देखकर मुझे अलंकार मंजूषा याद आ गयी और 'परभाकर' परीक्षामें बैठनेवाली एक छात्राका स्मरण हो आया जो शास्त्रीजीके आदेशानुसार बरतन माँजते-माँजते प्रत्येक रगड़के साथ 'चार हो रेफ़ तो स्रग्विणी छन्द है' रटा करती थी। ललित एवं वाक्कलाकी प्रयोग-चर्चा समाप्त होते ही बिमोल दादा पूछ बैठे "की खाबे ?" मैं समझा खाना खानेके लिए कह रहे हैं, अतः कृतकृत्य होते हुए मैंने कहा, "खाना तो मैं रातको खाता हूँ और वह भी मूँगकी दालकी खिचड़ी। हाँ, चाय पी लूँगा।" "भालो, भालो चा खाबो, चा खाबो।" तब मैं समझा कि बंगलामें खाने-पीने, सूँघने, सबको खाना कहते हैं फिर चाहे रोटी-तमाखू, सिगरेट, चाय-पानी-कुछ भी हो।

कुछ देर बाद बंगाल पौटरीज़के प्यालोंमें चाय लिये कोल्पोनाजीने प्रवेश किया और बंगाल केमिकलके 'जवा कुसुम हेअर आइल'की गन्धसे कमरा भर गया। बातचीतके दौरान दादाने बताया कि उनकी पत्नी गत दस वर्षोंसे (यानी विवाहके एक वर्ष पूर्वसे) 'गीतांजलि'में साम्यवाद तलाश कर रही हैं। बिमोल दादा अपनेको टैगोर-खानदानसे सम्बन्धित बताया करते थे। वे उदयशंकरके शागिर्द हैं तथा इस चढ़ती उम्र और उतरती जवानीके बावजूद मृदंग-नृत्यमें पटु हैं। चित्रकारीमें रोबिन्द्रके अनुयायी हैं। उनके कुछ चित्र, जैसे छोटा घोड़ा, काणा कौवा, मछली तितली, पारिजात, मूसा बैल, सारस, कमरेकी दीवारपर लटके हुए हैं। चर्चाका विषय कलासे पलटकर साहित्यकी ओर बढ़ते ही दादाने बताया कि उन्होंने बंग भाषामें कई गीत छाया, स्वप्न और निद्रापर लिखे हैं। उनका अखण्ड विश्वास है कि शरद्‌बाबू और बंकिम साहित्याकाशके 'एकमात्र' दो सूर्य हैं। अन्य भाषाओंके लेखक 'सपुटनिक' मात्र हैं। दादा स्वयं ब्राह्मोसमाजी हैं। कोल्पोनाजी काली माईकी उपासिका हैं और बिमोल दादाके 'शोशुर' चैतन्य महाप्रभुकी मधुराभक्तिके क़ायल हैं। दादाके छोटे भाई बिपिनचन्द्र निरीश्वरवादी होनेके बाद छुटपनमें घरसे भागकर जवानीमें कम्युनिस्ट पार्टीके अनुगामी बन गये हैं।

चाय समाप्त होनेके बाद बिमोल दादाने अजयको बुलाकर एक आनेके पान लाने और आना किताबमें लिखनेका आदेश दिया क्योंकि 'वे आज उधार कल नक़द' में विश्वास रखते थे और अपने उसूलके लिए उन्होंने आज तक कोई भी चीज नक़द पैसा देकर नहीं खरीदी थी। मास्टर नन्नेके यहाँ भी उनका हिसाब चलता था। पिताका श्राद्ध करवाते समय ब्राह्मणको भी उन्होंने पोस्टडेटेड चेक दिया था।

बिमोल दादाकी ऊँची बातें, चौड़े हाव-भाव और गहरे दर्शनको देखकर मेरा दम घुटने लगा, गला सूखने लगा और नाक पसीजने लगी। रेडियोकी बात तो मैं साफ़ भूल चुका था, क्योंकि बिमोल दादाके यहाँ

मैं इतना इम्प्रेस हुआ था कि अपने बारेमें डिप्रेस होना लाज़मी था। दादासे बिदा लेते समय नये सालको याद आते ही मेरे हाथ मिलाने-पर हाथको झकझोरते हुए मुँह फैलाये उन्होंने कहा, "शेम टु यू"। मुझे बिजलीका झटका लगा, परायी आँखों और जड़ पैरोंसे मैंने घरका रास्ता नापा। घर पहुँचा तो सामने ही चंचला खेल रही थी, मुझे देखकर दौड़ती आयी और तुतलायी भाषामें मुझे चिढ़ाने लगी, "अम्मा आज दद्दाकी हज़ामत कलेंगी"! विषयकी गम्भीर पूछताछ करनेपर पता लगा कि मेरी अनुपस्थितिमें चंचलाकी अम्माको गुस्सेका फिट पड़ा था और उसने कपड़े धोनेके ऊबड़-खाबड़ पत्थरपर मेरे घरके पुरातन उस्तरेपर धार धरी थी। चंचलाको डाँटकर मैं दबे पाँव उलटे पैर नन्नेकी दुकान-की ओर लपका और मौक़ा सँभालनेके लिए अगले दिन पिताजीका श्राद्ध बताकर सिरपर उस्तरा फिरवाकर सिरको बायें हाथसे सहलाता घरमें घुसा तो श्रीमतीजो लोकल रेडियो खोले आँखें बन्द किये तन्मयतासे लाइट म्यूज़िक सुन रही थीं –

जब तुम ही चले परदेस,

लगाकर ठेस,

ओ प्रीतम प्यारा, दुनिया में कौन हमारा····

कमरेमें फैली हुई हींगकी गन्धके साथ मछलीकी सुगन्धकी तुलना करता हुआ उस समाधिस्थ मूर्तिकी ओर निर्निमेष देखने लगा – देखता रहा।

आप सोचते होंगे

पता नहीं आपने कभी सोचा है या नहीं, पर बात वास्तवमें सोचनेकी ही है। प्रेयसीकी प्रणय-लीलाके बारेमें आपने सोचा होगा। बीवीकी भन-भन भी आपके सोचनेका विषय रही होगी। बच्चोंकी पलटनने भी आपको कभी-कभी चारपाईपर लेटे-लेटे सोचनेके लिए मजबूर किया होगा। मतलब यह कि और भी कई ऐसी चीज़ें होंगी जिनके बारेमें आपने सोचा होगा – चाहे मन मारे ही सोचा हो, जैसे दफ़्तरमें अधिकारियोंकी घुड़की, राशनकी दूकानपर 'अहं ब्रह्म' बना हुआ दूकानदार। सड़कपर केला खाकर छिलका छोड़ जानेवाले महाशय, रास्तेमें हाथ दिखानेपर भी न रुकनेवाली बस, दिल्लीकी आदमी उगलती हुई ट्राम और छींटकी अमेरिकी ढंगकी बुश्शर्ट पहननेवाला छैला इत्यादि। इनसे भी बढ़कर यदि किसी-को अपने मुन्नेकी माँकी ओर घूरते देखकर सोचनेसे नोचनेकी नौबत आकर दिमाग़में मोच आ जाये तो कोई ताज्जुब नहीं। मतलब यह कि आपके सोचनेके विषयमें साइकिलके घूमते हुए पहिये और लालाकी दो मन तीन सेर चार छटाँक तोंदके बैलेंसिंगसे लेकर शूर्पनखाके लिपस्टिक मण्डित खूनी होंठों और 'प्यारी बहनो, न तो मैं कोई नर्स हूँ', वाले विज्ञापन तक-की सभी छोटी-बड़ी वस्तुएँ डूबती-तैरती रहती होंगी।

इतना सोचनेपर भी आपने कुछ नहीं सोचा, क्योंकि जो कुछ भी आपने सोचा वह सोचा न सोचा बराबर है। इसलिए कि आपने शायद यह कभी नहीं सोचा कि अपने बारेमें भी कभी कुछ सोचा जाये, कभी

सोचा भी तो अब सोच कर दिया और अब सोच करनेसे फिर कभी सोचनेकी नौबत ही न आयी। इसी सिलसिलेमें एक कहानी याद आ गयी। एक बार गुरु द्रोणाचार्यने पाण्डव-कौरवादि अपने शिष्योंकी धनु-विद्याकी जाँच करनेके लिए सामने वृक्षपर एक मिट्टीका पक्षी रख दिया और अपने सभी शिष्योंको प्रत्यंचा चढ़ाकर निशाना साधनेका आदेश देकर पूछा कि तुम्हें सामने कौन-कौन-सी वस्तुएँ दिखाई दे रही हैं। किसीने पेड़ कहा, तो किसीने पेड़, पत्ते, आकाश आदि अन्य सभी चीज़ोंका ब्यौरा सुना दिया। लेकिन जब अर्जुनसे पूछा गया तो उसने बताया कि पक्षी ही दिखाई दे रहा है। आप सोचकर देखें तो आपको पता चल जायेगा कि अर्जुनका वास्तविक अभिप्राय यह था – "मैं देख रहा हूँ कि मुझे क्या देखते रहना है।" गर्ज़ यह कि जो कुछ हम सोचते हैं, उसे सोचना कहा जाये तो वास्तविकतामें वह सोचनेकी परिधिमें नहीं आता, क्योंकि घोड़ेकी लीदसे लेकर अणुबमकी भयानकता और कृत्रिम जल-वर्षणकी अद्‌भुतता सोचते हुए भी हम अपने बारेमें नहीं सोचते—

आँखिन सबको देखिया, आँखि न देखी जाये।

मेरा तात्पर्य यह नहीं कि हम अपने बारेमें सोचते ही नहीं। रस-गुल्ले देखकर हम ज़रूर सोचते हैं और काफ़ी तेज़ीसे। बस अथवा रेलके तीसरे दरजेके डिब्बेमें थोड़ी जगह दीख जाये और हमारा सोचना लप-कनेमें परिणत हो जाये तो भी सोचना तो रहेगा ही। किसी अप्रिय व्यक्तिकी तरक़्क़ी अथवा सम्पदाको देखकर अपनी फटी हालतपर क्रोध करके ईश्वरको (यदि आप भाग्यवादी हैं तो) या फिर शासन-व्यवस्थाको दोष देकर अपनी असफलताओंको ढँकते रहनेका भगीरथ प्रयत्न भी तो सोचना ही है और वह भी शुद्ध अथवा बिना मेल सोचना। यह सोचना बाज़ारमें बिकनेवाले असली घीकी तरह नहीं जिसको अशुद्ध प्रमाणित करनेके लिए पचास रुपयेका पुरस्कार रखा जाता है, पर जो कभी किसी-को मिलता नहीं सुना गया, क्योंकि घीके शुद्ध वनस्पति घी होनेके कारण

अशुद्धताका प्रश्न ही नहीं उठता।

मतलब यह कि जहाँ हमारे स्वार्थका प्रश्न तनकर कुतुबमीनारकी तरह खड़ा हो जाता है वहाँ सोचने और नोचनेकी शक्ति अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है। मेरा विषय इस प्रकारके सोचनेसे सम्बन्धित नहीं। पत्नी-द्वारा सुन्दर कहलानेपर भले ही आप अपने बारेमें कुछ सोचें और सोचते-सोचते अपनी तुलना अशोककुमारके रूप और जयराजके लहजेसे कर बैठें, तो भी मुझे उससे कोई मतलब नहीं। बुद्धू कहे जानेपर बाहरसे उसका विरोध करते हुए भी यदि आप अपने भीतर एक बुद्धूकी हरकतोंका आभास पाकर दार्शनिक मुद्रा बनायें और यह सोचनेकी चेष्टा करें कि वास्तवमें आप बुद्धू हैं या नहीं, तब भी वह मेरे विषयसे बाहर है।

वास्तविकता यह है कि हम-आप सभी सोचते हैं, सोचते-सोचते गाय तथा भैंसके जुगाली करते हुए एक ओर देखते रहनेमें भी हम 'सोचना' ही खोज निकालते हैं। इसी तरह गधेको भी एक विशेष दृष्टिकोणसे देखकर उसके सौन्दर्यकी सराहना करनेके बारेमें सोचते रहनेसे आप एक दार्शनिक कहला सकते हैं। पर मेरा संकेत इस सोचनेकी ओर नहीं है। ईश्वरकी कृपासे आप अच्छे-खासे दो पैरोंके मनुष्य हैं—डार्विनके अनुसार बन्दरके 'नूतनतम संस्करण' नहीं—और मनुष्य होनेके नाते आपके पास एक सिर भी है। और चूँकि आपके पास सिर है, हो सकता है उस सिरमें निरे छोले ही न भरे हों। इस दशामें सोचना लाजमी है, चाहे फिर आपका सोचना किसीकी बड़ी नाकसे टक्कर खा-खाकर पीछे उछलता रहे, चाहे 'अधिक उपजाओ' आन्दोलनके अन्तर्गत किसीकी बढ़ी हुई मूँछोंपर चिपकी हुई मलाईपर अड़ जाये। जबतक आप बे-सिर-पैर नहीं हैं और जबतक अपने-जैसे सिर-पैरवालोंमें रहनेका आपको जन्मसिद्ध अधिकार है, तबतक यह सब चलता ही रहेगा, लेकिन इतना सोचनेपर भी कुछ सोचना बाक़ी रह जाता है, जैसे यह लेख पढ़कर मेरी अक़्ल-

पर तरस खाकर आपका सोचना लाज़मी है। इसपर यदि आपको यह सोच हो जाये कि आप भी यदि लिखनेके भूतको डेरीके पनियल दूधकी खीर खिलाकर अपने वशमें कर लेते तो मुझसे कहीं अच्छा लिखने लगते, तो भी आश्चर्यके लिए गुंजाइश बाक़ी नहीं रहती।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि इतना सब सोच लेनेपर भी कुछ सोचना बाक़ी रह जाता है। आप पूछेंगे क्या? और पढ़ते-पढ़ते प्याज़की खुशबूसे रसोईकी ओर ध्यान आकृष्ट होनेके कारण पूछना भूल भी जायें तो भी मैं कहूँगा कि सोचते समय शीशा उठाकर उसमें ज़रा अपनी सूरत देखनेका कष्ट तो कीजिए। न हो तो बीवी अथवा बच्चोंमें-से किसीको घुड़ककर ही शीशा मँगवा लीजिए और उस शीशेमें अपनी गोभीके पकौड़े-जैसी नाक, पिचके हुए खरबूजों-जैसे गाल, हाथीकी आँखों-जैसी छोटी और बन्दर-जैसी मटकती हुई आँखें ध्यानसे देखिए। यदि आप एक सुयोग्य नागरिक हैं और अधिक उपजाओंका ट्रेडमार्क आपके मुखपर विराजमान हो तो मूँछोंके एक-एक बालको गिन जाइए और देखिए कि उनके लम्बे-लम्बे बाल 'मैं तो नैहर जैहों'वाली अदासे किस क़दर बल खा रहे हैं। इतना कर लेनेके बाद ज़रा नाक सिकोड़कर, मुँह फैलाकर, आँखें विस्फारित करके, माथेपर बल डालकर, बायें हाथसे बायें गालपर एक-आध मुँहासा नोचते हुए अपनेको आइनेमें निरखिए और अपने नामका समन्वय अपने उस अनुपम रूपसे कीजिए जो आप आइनेमें देख रहे हैं। ऐसा करनेमें आपको समझनेमें देर न लगेगी कि उन दोनोंमें उतना ही अन्तर है जितना आपमें और आपकी पत्नीमें। इतना ही नहीं ज़रा उस समयके बारेमें सोचिए, जब आप अकेले कमरेमें बैठे हों और जमुहाई आती हो। उस समय बिना सोचे मुँह चौड़ा करके नथने फुलाना कितना मनमोहक लगता होगा। यदि उस समय आप अपनी शक्ल देख सकें तो अहमदके कार्टून भी आपको फ़ीके लगने लगेंगे। या फिर चुपचाप बैठे मूँछके बाल पकड़कर घुमाते रहना, नाकको अँगूठे और चौथी उँगलीका चिमटा बनाकर बार-बार

खींचना, या फिर मुंह बना-बनाकर निचले होठको दाँतोंसे भींचना और यह भी नहीं तो कमसे कम कनिष्ठिकासे नाककी खुदाई करके प्राप्य वस्तुओंका परीक्षण करना – इन सबको आप सोचनेकी वस्तु भले ही न समझें, मैं तो समझता ही हूँ।

आप सोचेंगे कहाँकी सोच बैठा। लेकिन बात सोचनेकी ही है। चाहे सोचकर आप उसे अनसोचा कर दें, मुझे सोच न होगा। यह सोचकर भी बिना सोचे-समझे मैं जो यह लिखने बैठा हूँ वह एक सोचते हुए व्यक्तिको देखकर ही। आप मेरे पास होते तो मैं आपको खिड़कीकी ओरसे देखनेका इशारा करता और आप देखते एक व्यक्ति सोचता हुआ और देखकर आप भी सोचते कि इस बारेमें अब क्या सोचा जाये। यहाँ जो कुछ भी मैंने लिखा है या आपके शब्दोंमें सोचा है वह उस व्यक्तिको देखकर ही। लेकिन अब वह उठकर चला गया है, इसलिए आगे क्या लिखूँ यह सोचने लगा तो सोचता ही रह गया। अब बताइए, आपने क्या सोचा?

विटामिन एफ़

आपने अबतक केवल पाँच विटामिन्सके नाम सुने हैं। आप यह भी जानते हैं कि इनका सीधा सम्बन्ध जीवनी-शक्तिसे है। यह शक्ति सब्ज़ियों और फलोंमें होती है और इसीलिए सन्तुलित आहारकी आजके काग़ज़ी मनुष्यको बड़ी आवश्यकता रहती है। परन्तु सब्ज़ियों और विटामिन्ससे अधिक महँगे होनेके कारण आज विटामिनकी गोलियाँ ही आहार बन गयी हैं, ज़रा-सी कोई शिकायत हुई और डॉक्टर महाशयने फ़ौरन विटामिनकी गोलियों-को आपके हलक़के नीचे उतारना शुरू कर दिया। यक़ीन न हो तो किसी राधा, अनुराधा या शकुन्तलासे प्रेम करके देख लीजिए। कुछ ही समयमें आप एक अच्छे-ख़ासे कवि बन जायेंगे और तार ससकके स्वरोंमें रेंकनेवाले मिलके भोंपूमें भी आप प्रियाकी मधुर-मधुर पुकार सुनने लगेंगे — सड़कके टिमटिमाते लैम्पको प्रेयसीको आँख समझकर आप उससे अपनी आँखें मिलाये निर्निमेष देखते रहेंगे। ऐसी दशामें यदि आपका कोई सहृदय मित्र आपकी हालतपर तरस खाकर ज़बरदस्ती आपको डॉक्टरके पास ले जाये तो डॉक्टर आपकी कवि-कल्पनाओंको दिमाग़की कमज़ोरी समझ-कर फ़ौरन एक-न-एक विटामिन रिकमेण्ड कर देगा। उसके मतानुसार मानव-जीवनकी सभी विषमताएँ विटामिन्सकी कमीसे पैदा होती हैं और इसीलिए किसी भी मानसिक या शारीरिक विकारके लिए इन पाँचों विटामिनोंमें-से एक या अधिकका सेवन आवश्यक समझा जाता है। इस प्रकार यह पाँचों विटामिन्स शरीरके पोषण और रक्षणमें सहायक होते हैं,

परन्तु इनसे सर्वथा भिन्न एक और बिटामिन भी है जिसका सीधा सम्बन्ध शरीर-पोषण और रक्षणसे न होकर भक्षणसे है, यह है बिटामिन एफ़्। क्रममें इसका स्थान छठा है। पाँच बिटामिन-रूपी पाण्डवोंमें यह द्रौपदीके समान है। क्योंकि एक तो पाँचों बिटामिन्स इसके अधीन होते हैं और द्रौपदीके चीरकी भाँति परिणाममें यह अपरम्पार होता है।

इस बिटामिनका पता मुझे उस समय लगा जब मैं एक अच्छा-सा कैरियर पानेकी हरचन्द कोशिश करनेके बाद भी नाकामयाब रहा और अन्तमें बेकारीकी हालतमें 'आजके समाजमें सफलताका रहस्य' विषयपर रिसर्च करनेके लिए डॉ० तिकड़म एम० ए० के पास पहुँचा। डॉक्टर साहब सफलताके प्रतीक थे। एम० ए० की परीक्षा उनके लिए उनके एक मित्रने पास की थी, डॉक्टरेटकी डिग्रीके लिए उन्होंने स्वयं डॉक्टर अतीन्द्रियकी सात साल तक रद्दी छाँटी थी, बच्चोंको स्कूल पहुँचाया था। सुबह-शाम सब्जी पहुँचायी थी और इस दौरानमें अनेक पुस्तकोंकी कतरनों-को एकत्रित करके अतीन्द्रियजीकी प्रिय शिष्या कुमारी रम्भाके सहयोग और डॉक्टर साहबकी कृपासे तिकड़म महाशय डॉक्टर बने और आज एक मिनिस्टर साहबकी नज़रोंमें चढ़कर एक बहुत ऊँचे पदपर जम गये हैं। उनकी एक कन्या मिनिस्टर साहबकी पर्सनल असिस्टेण्ट है, दूसरी फ़िल्म संसारमें चमक रही है और तीसरी एक विख्यात नर्तकी है।

कई दिनों तक अनुनय करनेके बाद डॉक्टर तिकड़मने मुझे बताया कि डॉक्टरेट-वाक्टरेट करनेमें कुछ नहीं धरा है। ज़िन्दगीमें कुछ हासिल करना है तो आदमी बनो। डॉक्टरेट तो किताबोंकी कतरनें इकट्ठा करनेसे भी मिल जाती है। दुनियाको चलाना सीखो। दुनिया चलती है, चलाने-वाला चाहिए। मॉरल वैल्यूज़-जैसी कल्पनाएँ मनकी कमजोरी-मात्र हैं। इन सबके चक्करमें पड़ना हो तो कैरियरकी आशा छोड़ो। तीसरे दरजेका टिकिट कटवाओ, हरिद्वार पहुँचो और सिर मुँड़वाकर राम-नाम जपा करो। दुनियाको चलानेका रहस्य पूछनेपर उन्होंने बताया कि यह सब

खूबियाँ विटामिन एफ़में हैं, यह विटामिन कोई ओषधि न होकर इसका फ़ॉर्मूला एकदम न्यारा है। यह जिन व्यावहारिक तत्त्वोंसे बना है उसमें सभी तत्त्व एफ़ अक्षरसे शुरू होते हैं, यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। इसमें जो तत्त्व समाविष्ट हैं वे हैं फीड यानी जिससे कुछ काम हो उसे दबाकर खिलाओ फिर चाहे वह दावतें हों या घूस; फ्रेण्डशिप यानी उसे अपनी दोस्तीका विश्वास करा दो; फूल यानी स्वयं मूर्ख बन जाओ और समय आनेपर उसे मूर्ख बनाओ; फाउल यानी दग़ा देनेका मौक़ा आये तो ऐसे सुअवसरको कदापि न छोड़ो, फ़ैमिनिन, यानी समय पड़नेपर अधिकारियोंकी वासनाओंको भी तृप्त करते रहो क्योंकि इसी उपायका प्रचलन प्राचीन कालमें विष-कन्याके विधानमें भी था; फेस यानी अपने असली चेहरेको छिपाकर समय-समयपर अनेक मुखौटे धारण करनेकी क्षमता रखो; फ़र्स्ट यानी किसी भी विशेष समारोहके अवसरपर वी० आई० पी० जे०के आगे-आगे रहो; फ़ीयर यानी ऐसा दिखाते रहो कि तुम भगवान्से डरते हो; फ़ेण्ट यानी कितने भी अपमानित क्यों न हो उसका ज़रा भी असर अपनेपर न होने दो। डॉ० तिकड़मने बताया कि विटामिन एफ़्, के इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वोंमें-से जिसने केवल एक तत्त्वको भी अपनाया वही आज किसी-न-किसी बड़े पदपर चिपका हुआ है। ऐसा न होता तो पंजाबीभाषी फ़ौजासिंह विदेशमें भारतीय भाषाओंके अध्यापक बनकर न जाते। अहमक मियाँ दूतावासमें कल्चरल एटैची न बनते। गुटरगूँ करनेवाली कबूतरी देवी संगीत विभागकी अध्यक्षा न बनतीं और परचूनीवाले छिछोरे लाला एक करोड़पति कॉण्ट्रैक्टर न बन बैठते। डॉ० तिकड़मने यह भी बताया कि यह विटामिन कैमिस्टकी दूकानपर नहीं मिलता बल्कि इसे प्राप्त करनेके लिए गुरु बनाना पड़ता है और तन-मन-धनसे उसकी सेवा करनी पड़ती है।

गुरुवर तिकड़मसे सफलताके रहस्यका पता लगते ही मैंने रिसर्चका विचार छोड़ दिया है। गत पाँच वर्षोंसे उन्हींकी सेवामें रत हूँ। इस सेवा-

का ही परिणाम है कि आज मैं एक महकमेका अध्यक्ष हूँ और समाजमें एक आदरणीय व्यक्ति समझा जाता हूँ। अपनी पत्नी-द्वारा छोड़ दिये जानेके बाद भी मैं सुखी हूँ, यह सब डॉ० तिकड़म और विटामिन एफ़्का ही चमत्कार है। आपको यक़ीन न हो तो विटामिन एफ़्का सेवन कर देखिए।

पराक्रमी पापाजी

कोई भी नौकरी पानेके लिए कोई-न-कोई डिग्रीका या डिप्लोमाका होना ज़रूरी होता है। अपनी सुपुत्रीके विवाहकी बात सोचनेके पहले लड़कीका पिता भी अपने भावी जामाताकी योग्यताकी बात सोचना नहीं भूलता। समाजमें भी आपकी अक़लका अनुमान आपकी क्वालिफ़िकेशन्ससे ही लगाया जाता है। अक़्लके आप कितने ही मोटे क्यों न हों पर यदि आपके पास डिग्री है तो आपकी डिग्री दुनिया-भरपर डिग्री करनेमें समर्थ होती है। यदि ऐसा न होता तो 'जाहिल' या 'मूर्ख' शब्दका हमारी बातचीतमें इतना प्रयोग न होता जितना आये दिन हो रहा है, और अक़्लके अधिकारी यदि केवल पढ़े-लिखे लोग ही होते तो सामान्य ज्ञान इतना असामान्य न होता जितना हम आज देखते हैं। और न ही हमारे पापाजी अपने मोहल्लेमें वह स्थान पाते जो वे आज ऐंठे बैठे हैं।

मैं नहीं समझता कि कठोर पापाजीने इस नाज़ुक प्रश्नपर सोचकर मैदान मारा हो क्योंकि सोचनेके वे स्वप्नमें भी क़ायल नहीं हैं। वे जो कुछ करते हैं बिना सोचे विशुद्ध भावावेशमें। यहाँतक कि करनेके बाद भी वे नहीं सोचते कि उन्होंने क्या कर डाला है। ऐसा न होता तो वे अपने बेटेके सिरपर आईना फेंककर मारनेके बाद बेटेकी चोटकी बात नहीं तो आईनेके टूटनेसे होनेवाले नुक़सानकी बात अवश्य सोचते।

पर यह सच है कि वे नहीं सोचते और न सोचते हुए भी वे मोहल्लेके नेता बने बैठे हैं और इसी बातका मुझे हमेशा सोच रहा है। मैं नहीं

मानता कि दुनियाकी कोई भी बात बिना कारणके हो सकती है। और इसलिए पापाजीके मोहल्लेका नेता बन बैठनेके पीछे भी अवश्य कोई-न-कोई कारण है। बहुत खोजनेपर भी मैं पापाजीकी सफलताका कारण नहीं खोज पाया हूँ। योग्यताकी दृष्टिसे देखा जाये तो पापाजी केवल मैट्रिक हैं। उन्हें सज्जन पुरुष भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि मोहल्लेके कई लोगोंसे छोटे-छोटे बच्चोंके परस्पर झगड़ोंको लेकर वे मारपीट भी कर चुके हैं। सच्चरित्र भी उन्हें नहीं कहा जा सकता क्योंकि दर्जन-भर पिल्लोंके पिता होनेके बावजूद वे मोहल्लेकी प्रत्येक ललनाको केवल कनखियोंसे ही नहीं देखते बल्कि मौक़ा मिलते ही उससे मज़ाक़ भी कर लिया करते हैं और ललना बेचारी पानी-पानी हो जाती है। वे दानवीर भी नहीं हैं क्योंकि उनकी और उनके परिवारकी वीरश्रीका उपयोग दूसरोंकी चीजें खसोटनेमें ही होता है और इसीलिए मोहल्लेमें किसीकी बाग़में भी फूल, सब्ज़ियाँ या फल नहीं टिक पाते।

लेकिन प्यार और घटना अचानक हो जाया करती हैं। अतः एक दिन अचानक एक ऐसी घटना घटी जिससे पापाजीकी सफलताकी बात एकदम मेरी समझमें आ गयी।

बरसातके दिन थे। धुआँधार वर्षा हो रही थी। बिजली कड़क रही थी। कमलेशजी बना रही थीं और पापाजी गरमागरम पकौड़ोंपर टूट पड़े थे। तभी पापाजीके निजी संवाददाताओंमें-से एकने यानी दो नम्बरके उनके काकाने आकर संवाद दिया कि कल रातसे फ़क़ीरचन्दकी बीवी घरसे लापता है। पापाजीको ऐसा धक्का लगा मानो कमलेशजी ही भाग गयी हों। अँगीठीपर तेल जलता रहा और पापा-दम्पति औसान खोये फ़क़ीरचन्दके यहाँ जानेकी तैयारियोंमें लग गये। पैण्ट चढ़ाते-चढ़ाते उन्होंने समस्याकी अनेक सम्भावनाओंपर विचार कर डाला। नुक्कड़के साइकिलवालेसे एक लड़का पम्प माँग लाया और दूसरा वर्षामें भींगता हुआ मि० बिलानीके पास छाता माँगने जा पहुँचा। पापाजीको

अपने भींगनेकी चिन्ता नहीं थी पर कमलेशजीकी साड़ी नायलॉनकी थी और उनका अनुमान था कि एक छाता होनेसे कमलेशजीकी साड़ी भींगने-से बच जायेगी, क्योंकि कैरियरपर बैठते समय घुटनोंसे ऊपर तक साड़ी समेटकर बैठनेकी अपनी योजना उन्होंने पहले ही कमलेशजीको सुना दी थी। साइकिलमें हवा भर दी गयी और छाता भी आ गया। और पापा-दम्पति साइकिलपर सवार हो गये। सब काका-काकियोंने मिलकर कमलेशजीकी साड़ीका मुआईना किया और उसे समेटकर कमलेशजीकी जाँघोंमें दबानेमें मदद की।

जैसे-तैसे पापाजी घरसे तो चल पड़े पर हवा और पानीकी ऐसी बुरी थपेड़ें पड़ रही थीं कि साइकिल चलाना कठिन हो रहा था पर पापाजी हिम्मत हारनेवाले व्यक्ति नहीं थे। अतः एड़ी-चोटीका ज़ोर लगाये वे कमलेशजीको लादे साइकिल ठेलते जा रहे थे और अपने परा-क्रमपर हँसते जा रहे थे। यदि कोई इक्का-दुक्का राह चलनेवाला मन-चला व्यक्ति कमलेशजीके उस स्वरूपको देखनेका लोभ न संवरण कर पाता तो पापाजी मुड़कर देर तक उसे घूरने लगते। इतनेमें हवाका एक ज़ोरका थपेड़ा लगा और छाता कमलेशजीके हाथसे छूटकर दूर जा गिरा। पापाजी साइकिलसे जो एकदम कूदकर उसे पकड़ने भागे तो यह भूल ही गये कि पीछे साइकिलपर कमलेशजी विराजमान हैं। छाता आगे-आगे टेढ़ा-टेढ़ा लुढ़कता जा रहा था और पापाजी सीधे उसके पीछे दौड़े जा रहे थे। अपनेको सँभालनेमें कमलेशजीको कोई पाँच मिनिट लगे होंगे। शरीरसे सटी हुई भींगी साड़ीको अलग करके वे अपने बाल निचोड़ ही रही थीं कि हाँफते हुए पापाजी लौट आये। शेष यात्रा पैदल चलकर ही तय हुई।

फ़क़ीरचन्दसे भेंट हुई तो पापाजी गले पड़कर फ़क़ीरचन्दसे मिले मानो उनकी बीवी भागी नहीं मर गयी हो। पर अपना शोक और हर्ष प्रकट करनेका पापाजीके पास एक यही तरीक़ा था। साथ ही कमलेशजीके

साड़ी बदल लेनेकी बात निकलते ही वे मज़ाक़में यह भी कहना न भूले कि अच्छा हुआ भाभी भाग गयी नहीं तो फ़क़ीरचन्द तुम्हें उधार साड़ी देनेकी भी बात नहीं कहते।

फ़क़ीरचन्दसे सारी बात जान लेनेके बाद उन्होंने जो प्रश्नोंकी झड़ी लगायी तो तुके और बेतुके सारे प्रश्न पूछ डाले मानो वे डॉक्टर और वकील दोनों एक साथ हों।

अन्तमें कमलेशजीसे परामर्श करके उन्होंने फ़क़ीरचन्दसे तत्काल पुलिसमें रिपोर्ट देनेके लिए कहा और समाचार-पत्रोंको सूचना देने और वकीलसे सलाह करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। फ़क़ीरचन्दके बार-बार कहनेपर भी कि कुछ दिन और देख लिया जाये हो सकता है कि वह किसी रिश्तेदारके यहाँ चली गयी हो, पापाजीने उनकी बात नहीं मानी। पापाजीके अकड़ते ही कि वे स्वयं इस बातका विज्ञापन करेंगे, फ़क़ीरचन्दको उनकी बात मान लेनी पड़ी। उस तेज़ वर्षामें फ़क़ीरचन्द-को जबरदस्ती पुलिस स्टेशन बिदा करके पापाजी नये उत्साहसे समाचार-पत्रोंको सूचना देने चल पड़े। जब रातको घर लौटे तो हिन्दू कोड बिल लिये हुए। रात-भर उन्होंने उसका अध्ययन किया और सुबह मैदान मारे-से कमलेशजीके साथ वे फ़क़ीरचन्दके यहाँ जा पहुँचे। क्योंकि पापा-जीके विचारमें क़ानूनकी वह पुस्तक पढ़नेके बाद वे केसको अच्छी तरहसे समझ गये हैं।

फ़क़ीरचन्दके यहाँ कोहराम मचा हुआ था। बाहर कई अड़ोसी-पड़ोसी इकट्ठे हो गये थे और भीतर फ़क़ीरचन्दकी बीवी पतिसे उलझी पड़ी थी। पापाजीने यह काण्ड देखा तो सहम गये पर वे उन लोगोंमें-से नहीं थे जो कभी भी हार मानते हैं। अतः क़ानूनका वह मोटा वाल्यूम चुपचाप कमलेशजीको थमाकर और सामने लानमें साइकिल फेंककर हाँफते हुए-से वे भीड़में घुस गये। लोगोंसे कानाफूसी करनेके बाद उन्हें पता लगा कि कल रक्षाबन्धन होनेके कारण फ़क़ीरचन्दकी बीवी परसों रात

अपने भाईके यहाँ चली गयी थी और जाते समय फ़क़ीरचन्दसे कह भी गयी थी, पर फ़क़ीरचन्द नशेमें चूर होनेके कारण वे इस बातको भूल गये और जल्दबाज़ीमें बीवी भागनेकी ख़बर अख़बारोंमें छपवा दी। सुबह जब उनके भाईने अख़बार पढ़ा तो फ़क़ीरचन्दकी बीवी अपने सारे रिश्तेदारोंको इकट्ठा करके आ धमकी और अब सब मिलकर फ़क़ीरचन्द-पर टूट पड़े हैं। फ़क़ीरचन्दकी दशाकी कल्पना करके पापाजीकी आँखें भर आयीं। वे तत्काल लोगोंको ठेलते हुए कमलेशजीके पास जा पहुँचे और उनसे परामर्श करके उलटे पाँव फ़क़ीरचन्दके घरमें घुस गये। फ़क़ीर-चन्दकी बीवी फ़क़ीरचन्दको दबोचे दोनों हाथोंसे उसके बाल नोंच रही थी और मुँहसे गालियोंके साथ-साथ नशेख़ोरीपर लानत दे रही थी। उतावले पापाजीसे यह सब नहीं देखा गया। उन्होंने बुज़ुर्गियतके अन्दाज़से फ़क़ीरचन्दकी बीवीकी दोनों बग़लोंमें हाथ डालकर बड़ी मुश्किलसे उसे फ़क़ीरचन्दसे अलग किया और बीच-बचावके लिए आवाज भारी किये भाषण देने लगे। भाषणके दौरानमें उन्होंने बताया कि मियाँ-बीवीमें ऐसी बातें हो ही जाया करती हैं उसका बुरा नहीं मानना चाहिए। फ़क़ीरचन्दको समझाते समय वे यह भी बताना नहीं भूले कि ग़ुस्सेका ऐसा ही एक फिट एक बार कमलेशजीको भी पड़ गया था और पापाजीकी ख़बर उन्होंने जूतियोंसे ली थी पर पापाजीने उसका ज़रा भी बुरा नहीं माना था। भीतर थोड़ी शान्ति होते ही पापाजीने बाहर आकर भीड़को ललकारा और लोग मुँह लटकाये लौटने लगे।

अब आप ही बताइए कि ऐसी घनी और देशी घीसे चुपड़ी हुई योग्यता क्या डिग्रियोंमें धरी है? वह तो एकदम स्वयम्भू होती है। फिर भला पापाजीके स्वयंसिद्ध नेता होनेमें किसीको क्या आपत्ति हो सकती है।

स्पेशलाइज़ेशन

संसार परिवर्तनशील है – इस सत्यका उद्‌घाटन कई सत्पुरुषोंने समय-समयपर किया है। और मनुष्य संसारका ही एक अंग होनेके कारण वह भी निरन्तर बदलता रहता है परन्तु बदलते हुए भी वह समझता है कि वह नहीं बदलता और मजा यह कि यह समझते हुए भी वह बदलता रहता है और इस बदलनेमें उसकी समझ भी बदलती रहती है। ऐसा न होता तो उर्दू शाइरीमें 'बेवफ़ाई' सुननेमें न आती और इस बेवफ़ाईको अनुपस्थितिमें उर्दू शाइरी एकदम फ़ीकी पड़ जाती। परिवर्तनरूपी इस सत्यका उद्‌घाटन मेरे सम्मुख उस दिन हुआ जिस दिन विदेशसे लौटे देशी फ़ौजासिंहकी विदेशी बातें सुन-सुनकर मुझे ज़ुकाम हो गया और नाकसे चुपचाप उमड़कर कविता ही नहीं बहने लगी बल्कि काफ़ी शोरगुलके साथ निरन्तर तीन दिन तक बहती रही और अन्तमें बायें नथुनेमें ऐसा दर्दे-दिल शुरू हुआ कि पता ही नहीं लगता था कि दर्द कहाँ है और नाकके हिस्सेपर ही क्यों कर एक बदसूरत-सी कालिमा छा गयी है।

क्षमा कीजिए। नाकके इस सरस वर्णनको पढ़कर आप अपना साहित्यिक परिचय देते हुए इस रसका स्थायी भाव खोज निकालनेमें जल्दी मत कीजिए क्योंकि मैं यहाँ स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैं प्राचीन और अर्वाचीन रस-शास्त्रियोंकी स्थापनाको एकदम निराधार समझता हूँ। इन सब मनचलोंने शृंगारको रसराज माना है पर शृंगार रसके साधन और रसास्वादनके तुरन्त बाद होनेवाली निष्पत्तिकी ओर इन आचार्योंने

देखकर भी अनदेखा कर दिया है। परन्तु मैं ऐसा नहीं करूँगा क्योंकि जो जैसा है उसका वैसा ही वर्णन करना मैं लेखकका कर्म समझता हूँ। मेरी इस साहित्यिक ईमानदारीके कारण आप मुझे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीकी शिष्य-परम्परामें अग्रगण्य स्थान दे दें तो मैं बिना दायें-बायें देखे उसे झटसे स्वीकार कर लूँगा।

हाँ तो नाकका दर्द तो मैं चुपचाप सहता रहा पर उसपर छायी हुई कालिमाने मेरा जीना दूभर कर दिया। जिन मित्रोंने आज तक मेरी नाकका सर्वेक्षण करनेकी आवश्यकता अनुभव नहीं की थी कि वह छोटी है, बड़ी है, पैनी है या गुट्ठल है, है भी या नहीं है, वे सब मुझे देखते ही पहला प्रश्न मेरी नाकके बारेमें करने लगे। अब आप ही बतलाइए कोई नाकके बारेमें भी इस तरह पूछा करता है! पर वे न पूछें तो दोस्त कैसे! और मैं विस्तारसे अपने नाककी बात न बताऊँ तो कहेंगे 'बड़ी नाक' है।

आखिर मैंने तय कर डाला कि नाककी इस कालिमाका कोई इलाज शीघ्र ही करना चाहिए। भगीरथ प्रयत्नके बाद मुझे पता लगा कि दिल्लीमें एक खास नाकवाले डॉक्टर हैं जो केवल नाक ही देखते हैं। मैंने तत्काल अपाइण्टमेण्ट ले लिया और दूसरे दिन नाक दिखानेके लिए जा पहुँचा। नाकवाले डॉक्टरने मेरी नाकका परीक्षण करते हुए मुझसे पूछा कि मुझे क्या शिकायत है। मैंने सारा हाल बताते हुए जब दर्दका स्थान बतानेके लिए नाकको स्पर्श किया तो उन्होंने बताया कि वे नाकवाले डॉक्टर अवश्य हैं और नाक देखते भी हैं पर जिस चीज़के वे विशेषज्ञ हैं वह है नाकका सीधा नथुना। बीमारीका एक लम्बा-चौड़ा क्लिष्ट नाम लेते हुए उन्होंने बताया कि मुझे शायद अमुक बीमारी है जिसका इलाज बायें नथुनेवाले डॉक्टर रामानुकण्डाभूतलिंगम पिल्लै कर सकते हैं। कन्सल्टेशन फ़ी चुकाकर मैं डॉक्टर भूतलिंगम पिल्लैके पास जा पहुँचा। डॉ० पिल्लै, पिल्ले नहीं थे बल्कि ऊँचे पूरे जरठ भूतलिंगम थे। मेरी नाकपर क्रूरतासे

एक लोहेकी छोटी-सी घड़ी पटक-पटककर उन्होंने दर्दका स्थान निश्चित करते हुए भुनवाणोमें रेंककर कहा कि वे केवल नाककी मांसपेशियोंके विशेपज्ञ हैं और मेरी नाकका दर्द नाक-पेशियोंका दर्द न होनेके कारण वे दर्द-नाकका इलाज नहीं कर सकते। हाँ दर्दका इलाज हो जाये तो वे नाककी कालिमाका इलाज कर सकेंगे पर उसके पहले मुझे नेज़ल कनार्स विशेपज्ञ, बोन विशेपज्ञ, और नर्व विशेषज्ञसे परामर्श करना होगा। क्योंकि उनका अनुमान है कि दर्द या तो नाककी हड्डीसे शुरू हुआ है या किसी कमज़ोर नर्वसे या फिर नाककी नलीमें किसी प्रकारका अवरोध पैदा हो गया है। उन्होंने यह भी बतलाया कि इस दर्दका इलाज शीघ्र ही नहीं हुआ तो वह आँख और दिमाग़से होकर दिल तक पहुँच सकता है। शेल्फ़से एक मोटी-सी किताब निकालकर देखते हुए उन्होंने यह भी बताया कि एक दूसरी सम्भावना हेमारेज होनेकी भी है यानी नसोंके फट जानेकी। नाककी इस छानबीनसे मैं इतना आतंकित हुआ कि बिना एपाइण्टमेण्टके ही नाककी नहरवाले विशेपज्ञके पास जा पहुँचा। वे बँगलेके लॉनपर बैठे अखबार पढ़ रहे थे। पर समय होते हुए भी पहलेसे समय निश्चित न होनेके कारण उन्होंने मेरे नाककी ओर ताकनेसे साफ़ इनकार कर दिया और दूसरे दिन सुबह ठीक बारह बजकर तीन मिनटपर आनेके लिए कहा। मैं अपनी-सी नाक लिये वापस लौट आया। दूसरे दिन बसमें हचकोले खाता, नाकको भीड़से बचाता, जब मैं डॉक्टर साहबके पास पहुंचा तो वे छूटते ही पूछ बैठे – "नाकका एक्स-रे लिया है? न लिया हो तो फ्रण्ट और साइडसे नाकका एक्स-रे निकलवाकर ले आइए, उसके बिना कुछ बताना मुश्किल है।" दफ़्तरसे मैंने बड़ी मुश्किलसे दो घण्टेकी छुट्टी ली थी। पिछले तीन दिनोंसे यही कार्यक्रम चल रहा था। अबतक मुझे दफ़्तरकी ही चिन्ता थी पर अब नाककी एक नयी चिन्ता पैदा हो गयी और दफ़्तरमें होनेवाले परिणामोंको मैं भूल-सा गया। आफ़िसको फ़ोन किया और फटफटिया पकड़कर नाक उछालता एक्स-रे-

वालेके पास पहुँचा और क्यूमें खड़ा हो गया। शामको छह बजेके लगभग मेरा नम्बर आया और किसी फ़िल्मी एक्ट्रेसकी भाँति मेरी नाकके स्नेप ले लिये गये। अब नाकवाले डॉक्टरसे मिलनेका समय न रहा था अतः नाकके फ़ोटो लिये मैं सीधा अपने अफ़सरके घर जा पहुँचा। नाकके दोनों नेगेटिव देखकर वे पॉजेटिव बने और एक हफ़्तेकी छुट्टी देना उन्होंने स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन नाज़ल स्पेशलिस्टने मेरी नाकको अनेक छोटे-बड़े यन्त्रोंकी कसौटीपर कसा और बताया कि मेरे बायें नथुनेमें कुछ भी नहीं मिलता – वह एकदम साफ़ है। उन्होंने यह भा बताया कि दर्द और कालिमा 'लोकल' न होकर किसी निगूढ़ विकारसे सम्बन्धित जान पड़ती है। अब हड्डी और नर्वके विशेषज्ञोंसे मिलना लाजमी हो गया। कहना न होगा कि नाककी इस आकस्मिक समस्याने और विशेषज्ञोंकी रिपोर्टोंने मुझे इतना आतंकित कर दिया था कि पानीकी तरह पैसा बहाने और परेशानी उठानेके बाद भी मेरी नींद हराम हो गयी थी और एक बीमारीको ठीक करानेके प्रयत्नमें ही मैं कई छोटी-मोटी बीमारियोंका शिकार बन बैठा था। हड्डीवाला डॉक्टर मुझे कई दवाएँ पिलाकर नाककी हड्डीका परीक्षण लगातार तीन दिन तक करता रहा और उसके बाद इस नतीजेपर पहुँचा कि नाककी हड्डी कुछ टेढ़ी है। हड्डीके सूक्ष्म कणोंका निरीक्षण करनेके लिए उसने मुझे रीढ़की हड्डीके विशेषज्ञके पास भेजा। इन डॉक्टर महाशयने बड़ी ही बेमुरव्वतीसे एक छोटी-सी रीढ़की हड्डीमें भोंककर थोड़ा-सा पानी निकाला। एक छोटी-सी शीशीमें वह पानी और डॉक्टरकी संक्षिप्त रिपोर्ट लेकर मैं कराहता हुआ नाककी हड्डीके विशेषज्ञके पास लौट आया। डॉक्टर साहबने रिपोर्ट देखी, उस पानीको काँचकी एक छोटी-सी नालीमें खौलाया और तुरन्त बता दिया, "नाककी हड्डी नॉर्मल है।"

अब केवल नर्व-विशेषज्ञको दिखाना बाक़ी रह गया था पर रीढ़की हड्डी पंक्चर हो जानेके कारण मेरी इतनी हवा सरकी हुई थी कि दो क़दम

चलना भी मुश्किल हो गया था। अतः रिपोर्टोंका एक अच्छा खासा फ़ाइल बग़लमें दबाये मैं लँगड़ाता हुआ जो घर पहुँचा तो दो दिन तक चारपाई-से न उठ सका। रीढ़का दर्द इतना बढ़ गया था कि नाकका दर्द ग़ायब ही हो गया था। तीसरे दिन पीठका दर्द कुछ हलका हुआ तो नाकका दर्द बढ़ गया। और नर्व-विशेषज्ञसे मिलना और भी ज़रूरी हो गया। अतः लम्बी नाक और लम्बे बालवाले अपने पड़ोसीको साथ लेकर मैं नर्ववाले डॉक्टरके अस्पतालमें पहुँचा। उन्होंने मेरी नाककी सम्पूर्ण फ़ाइल पढ़ डाली और तत्पश्चात् मेरी नाकको बिजलीके कई 'शॉक' दिये। मैं काँप उठा। उन्होंने बताया कि नाककी नर्व्ज़ सचेत हैं, उनमें कोई ख़राबी नहीं पर मेरा नर्वस सिस्टम कुछ वीक है अतः किसी समय मुझे इसका इलाज करवा लेना चाहिए। मेरी नाकको दोबारा देखते हुए नाक सिकोड़कर उन्होंने अन्तिम 'वर्डिक्ट' देते हुए कहा, "नाकका दर्द स्थानीय जान पड़ता है यानी 'मस्कुलर'। आप नाककी मांसपेशियोंके विशेषज्ञको ही कंसल्ट कीजिए और यह सब रिपोर्टें उन्हें दिखाइए। समयपर इलाज नहीं हुआ तो सेप्टिक हो जानेका ख़तरा है। उस सूरतमें आपको नाकसे हाथ धोना पड़ेगा।" नाक कटनेकी कल्पनासे ही मैं सिहर उठा और झटपट मांसपेशी विशेषज्ञ डॉक्टरसे जा मिला। डॉक्टरने रिपोर्टोंकी फ़ाइल देखी और सन्तोषकी साँस लेते हुए कहा, "ठीक है", और मेरी नाक पकड़कर उसका बायाँ छिद्र एक जटिल यन्त्रसे देखना आरम्भ कर दिया। थोड़ी देरके बाद निःश्वास छोड़ते हुए उसने कहा, "केस काफ़ी बिगड़ चुका है। ख़ैर, मैं अपनी ओरसे पूरी कोशिश करूँगा। पर इसके पहले कि मैं कुछ उपचार करूँ आपको पेथालॉजिस्टसे अपने मल-मूत्रकी भी जाँच करवाकर रिपोर्ट लानी होगी। उसी प्रकार ब्लड टेस्ट करवा लेना भी जरूरी है।" मरता क्या न करता। एक हाथमें टट्टीका डिब्बा और दूसरेमें पेशाबकी बोतल थामे दूसरे दिन मैंने वह टेस्ट भी पास कर लिया और रिपोर्ट डॉक्टरके पास ले गया। रिपोर्ट पढ़कर और मेरी नाक देखकर वह जिस

नतीजेपर पहुँचा वह यह था कि मेरी नाककी खालके सेल्स सड़ने लगे हैं और यदि शीघ्र ही सड़ी हुई खालको काटकर न निकाला गया और दूसरी खाल वहाँ न लगायी गयी तो नाक काट डालनेके सिवा कोई चारा न रहेगा। उन्होंने यह भी बतलाया कि इसे ऑपरेशनके समय स्किन सर्जनकी भी आवश्यकता पड़ेगी और वह कटि विभागका स्पेशलिस्ट होना चाहिए क्योंकि नाकपर चिपकानेके लिए खाल मेरे कटि प्रदेशसे ही काटनी पड़ेगी और यह काम वही करेगा। इन सबका खर्च पाँच सौ रुपये बैठेगा, नर्सिंग होममें दस दिन रहनेका खर्च अलग। अतः यदि मुझे अपनी नाकको सुरक्षित रखना है तो मुझे पाँच सौ रुपये अग्रिम देकर तुरन्त नर्सिंगहोममें दाखिल हो जाना चाहिए। एक ओर नाककी चिन्ता और दूसरी ओर छह-सात सौ रुपयोंकी व्यवस्था करनेकी समस्याने मुझे पागल बना दिया। 'एडमिट' होनेके लिए व्यवस्था करनेके बहाने मैं घर तो चला आया पर इस नयी परिस्थितिने तो जैसे मुझे निष्प्राण ही कर दिया। ऑपरेशनके नामसे मैं वैसे ही घबरा जाता हूँ और फिर ऑपरेशन भी नाकका और सहारा किसीका भी नहीं। इतने बड़े दिल्ली शहरमें मैं अकेला। इस बेबसीमें मुझे एक ही आशा दिखाई दी और वह यह कि अपने ससुर साहबसे रुपये मँगवा लूँ। मैंने तत्काल हिन्दीमें तार दिया — "नाक कटनेवाली है, सात सौ रुपये तारसे भेजिए।" वे समझे मैं किसी घोर संकटमें फँस गया हूँ, अतः घरानेकी इज्जतका प्रश्न है, समझकर वे मेरे चारों देहाती सालोंके साथ मौजीराम लाड़ीवाले संसद् सदस्यके नाम सहायताके लिए गाँवके जमींदारका पत्र लिये, तीसरे दिन दिल्ली आ पहुँचे। मेरा गिरा हुआ स्वास्थ्य देखकर उन्हें गहरा सदमा पहुँचा परन्तु नाकका सम्पूर्ण इतिहास सुनकर वे तनिक आश्वस्त-से हुए और कहने लगे : "आप बेकारमें अँगरेज़ी इलाजके चक्करमें पड़े हुए हैं। ये अँगरेजी डॉक्टर बातका बतंगड़ बना देते हैं। पहले कोई देसी इलाज कर देखिए।" और दिन-भरकी दौड़-धूपके बाद एक देहाती बूढ़ेको पकड़ ले आये। बूढ़ेने नाक-

को देखते ही बता दिया कि जुकाममें नाक पोंछते रहनेके कारण नाक छिल गयी है और इसीलिए दर्द भी है। पहाड़ी बथुआ पकाकर सूँघने और उसे पीसकर नाकपर गरम-गरम लेप करनेसे दो दिनमें नाक और जुकाम दोनों ठीक हो जायेंगे। सच जानिए, इस मामूली-सी पत्तीके इस्तेमालसे मुझे दो ही दिनमें आराम आ गया। नाककी कालिमा भी ग़ायब हो गयी और मित्रोंने कभी भी यह नहीं पूछा कि नाक कैसे ठीक हो गयी। परन्तु मैं बराबर सोचा करता हूँ कि मेरे छुटपनमें गाँवका एक ही डॉक्टर सब प्रकारके रोगोंका इलाज किया करता था और मरीज़ ठीक भी हो जाया करते थे। आज चिकित्साशास्त्रने उन्नति की है तो प्रत्येक बीमारीके विशेषज्ञ पैदा हो गये हैं। विशिष्ट ज्ञानकी वृद्धिके साथ-साथ साधारण ज्ञानका लोप होता जा रहा है। हम स्पेशलिस्टके पास इसलिए जाते हैं कि हमारी बीमारीका इलाज ठीक और जल्दी हो जायेगा पर बीमारी-का इलाज होनेके पहले ही अनेक परेशानियोंके कारण हम कई और बीमारियोंका शिकार बन जाते हैं। मैं अब निश्चित रूपसे समझने लगा हूँ कि अगामी दस-बीस वर्षोंमें स्पेशलाइज़ेशनकी इस नयी बीमारीके कारण हफ़्तेके हफ़्ते बाल कटवाना भी दूभर हो जायेगा। आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि बाल कटवानेका एक सीधा-सा कार्य अनेक विभागों और उप-विभागोंमें विभाजित हो जाये और आपको अनेक नाऊ-विशेषज्ञों-से अलग-अलग और पहलेसे एपाइण्टमेण्ट लेना पड़े। क्योंकि बालोंके विभिन्न 'कटों'के अलग-अलग विशेषज्ञ होंगे, इसी प्रकार मूँछ और दाढ़ीके भी। मूँछोंमें भी दायीं और बायीं मूँछके अलग-अलग विशेषज्ञ हो सकते हैं। और हो सकता है कि यह द्राविड़ी-प्राणायाम करनेके बजाय आप आपसमें ही एक-दूसरेकी हजामत करना शुरू कर दें।

एक समस्या

वर्तमान जीवन समस्याओंका जीवन है। आज जहाँ हमारे सम्मुख एटम बम तथा निःशस्त्रीकरणकी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ मँडरा रही हैं, घूस खोरी, कम खाओ, राजनीतिक दलबन्दी, अधिक उपजाओ पर पैदा कम करो, की राष्ट्रीय समस्याएँ सीना ताने खड़ी हैं, वहाँ कुछ ऐसी पारिवारिक तथा वैयक्तिक समस्याएँ भी हैं जिनका हल खोज निकालनेमें शुद्ध वनस्पति घी और खालिस सपरेटेकी समस्त पौष्टिक शक्ति लगा देनेपर भी हल नहीं निकलता। जैसे पत्नीकी तेज़-मिज़ाजी जानते हुए भी हिन्दू कोड बिलका अस्तित्व, हर साल नियमित रूपसे घरकी पलटनमें एक नन्हेंकी वृद्धि होना, अचानक किसी सगे-सम्बन्धीका विवाह तय हो जाना जहाँ आपका जाना और कुछ देना आवश्यक हो, रीतिकाल वर्णित सद्यःस्नाता, विप्रलम्भ, मुग्धा, मानिनी और तिलकधारी पण्डितजीके अनुसार निर्लज्जा आदि नायिकाओंका प्रत्यक्ष रूपसे सुबह-शाम राजमार्गोंपर अवतरित होना, सुबह-सुबह ज़मादारिनका अकारण झगड़कर काम बन्द कर देना या महीनेके अन्तिम दिनोंमें बिना सूचना दिये किसी दूरके रिश्तेदारका शहर देखने आ टपकना – कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिनमें उलझा हमारा जीवन सुरैया और नरगिसके युगमें विचरनेवाली बहूको देखकर वृद्ध दादा-दादीकी 'हाय-हाय' की भाँति चौबीस घण्टे हाय-हाय करता रहता है।

इन सभी समस्याओंके अतिरिक्त एक ऐसी समस्या भी है जो सर्वसाधारण होते हुए भी असाधारण कही जा सकती है, विशेषकर वर्तमान

युगमें। यह निर्वाचनकी समस्या है, पुराने ज़मानेकी स्वयंवर-प्रथासे भिन्न। जैसे शासनके लिए अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करना, लेकिन उसके लिए आपको परेशान नहीं होना पड़ता, क्योंकि उम्मीदवारोंके खुल्लमखुल्ला और गुप्त प्रसाधन आपको सोचने और परेशान होनेका अवसर ही नहीं देते। और आप अनायास घर-घर प्रचार करनेके लिए भेजी गयी मेनकाओंकी मुसकान, नीले नोटोंके आश्वासन या भद्र नेताओंके भाषणोंसे प्रभावित होकर अपना मत इस प्रकार दे देते हैं जैसे सिरपर आयी बला टाल रहे हों या न टलनेवाले मेहमानको स्वयं गाड़ीमें बैठाने जा रहे हों, जिससे उसके वापस लौटनेकी आशंका न रह जाये। दूसरा निर्वाचन गृहस्थीकी आवश्यकताओंसे सर्वत्र सम्बन्धित है, पर उसमें दख़ल देनेकी आपपर नौबत ही नहीं आती क्योंकि इस मामलेमें श्रीमतीजीकी दृष्टिमें किसी गत अवसरपर आप निरे बौडम सिद्ध हो चुकनेके कारण वे फिर आजीवन कभी आपको ऐसा अवसर ही नहीं देती जिससे उनकी दृष्टिमें उनके घरका कबाड़ा हो।

निर्वाचनके इस वर्गीकरणके अतिरिक्त एक और प्रकारका निर्वाचन भी है जिसमें अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता है क्योंकि इस दिशामें की गयी ज़रा-सी भूल आपके फाउण्टेन पेन-हरणसे पत्नीहरण तक पहुँचकर अन्तमें न्यायालयों-द्वारा सुरक्षित, लेकिन आजके युगमें कृश तथा सन्तप्त आपके प्राण भी हरण कर सकती है। यह निर्वाचन मैत्रीसे सम्बन्धित है या हम इसे मित्रोंका वरण कह सकते हैं, अपने स्वभावमें गुण-दोषोंकी भाँति प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें कुछ अच्छे-बुरे मित्र होते हैं, पर जिस प्रकार वह अपने गुण-दोषोंकी विवेचना करनेकी चेष्टा नहीं करता और कोई करे तो चटकने लगता है, उसी प्रकार मित्र बनाते समय वह उन्हें नहीं परखता। अत: कलका शत्रु आज मित्रके रूपमें आ उपस्थित होता है और खेद तो इस बातका है कि जिस प्रकार आर्य-भूमिमें पत्नियोंकी कोई संख्या निश्चित नहीं, उसी प्रकार मित्र भी असंख्य हो सकते हैं और उनके वरणके लिए

आपको 'क्यू' में नहीं खड़ा होना पड़ता ।

मित्र बनानेके लिए कोई स्थान निश्चित नहीं होता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आजके युगमें ब्लैक मार्केट और रोमांस करनेके लिए कोई स्थान निश्चित नहीं है। शायद इसीलिए प्राकृतिक हिमालयसे लेकर सरकारी या सामाजिक 'आलयों' की योजनामें 'मित्रालय' का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, सर्वव्यापी परमात्माकी भाँति मित्र भी सर्वव्यापी हैं। अतः उसे प्राप्त करनेके लिए साधनाकी आवश्यकता नहीं होती। सफ़रमें रेल-का डिब्बा, बस स्टैण्ड, गलीके नुक्कड़पर दूकान, नाई का सैलून, क्लब और होटल आदि कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ वह अनायास ही मिल जाता है जिस प्रकार आजकल किसी सभा-सोसाइटीका सभापतित्व स्वीकार करनेके लिए नेता या मिनिस्टर और कहीं आपकी श्रीमतीजी स्वरूपवान् और सोशल हों या आपका हाथ काफ़ी लम्बा-चौड़ा हो तब तो मित्र ढूंढ़नेके लिए आपको कहीं जानेकी भी आवश्यकता नहीं, क्योंकि ऐसा सुन्दर अवसर पाकर मित्र-समुदाय स्वयं आपके चारों ओर मँडराने लगेगा, जिस प्रकार हम भारतवासी स्वयं ही किसीको प्रतिष्ठा देकर फिर उसीकी खुफ़िया-बर्दारीमें उसके चारों ओर मँडराते रहते हैं और आपका सोशल सर्किल इतना बड़ा बन जायेगा कि एक दिन यदि आप विख्यात नेता बननेकी चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण होते न भी देख पायें तो भी नेताकी पूछ अवश्य बन जायेंगे, जिससे आपकी पूछ चारों ओर होने लगेगी।

मित्रोंका वर्गीकरण

आज विभिन्नता और वस्तु-वैचित्र्यके इस युगमें वर्गीकरणकी आवश्यकता हुई तो इतनी कि उसने एक विकट रूप धारण कर लिया और बेचारे मनुकी वर्ण-व्यवस्थाका विरोध करते हुए भी आज वह इतनी व्याप्त हो गयी है कि मानव-जीवन ही क्या उसने वस्तु-संसारमें अपना आधिपत्य

जमा लिया है जिसके फलस्वरूप बेचारे लक्ष्मीपुत्र मिल-मालिकोंको भी फ़िल्म-प्रोड्यूसरोंकी फ़िल्मोंकी भाँति सुरैया और नरगिसके वस्त्र-संस्करण निकालने पड़ गये हैं, जिससे समानाधिकारके गणतन्त्रवादी युगमें किसीको गिला न रहे कि उनकी पहुँच इन विदुषियों तक नहीं हो सकती।

विचार-सुविधाके लिए मित्रोंको भी हम श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं :

शूगर कोटेड् मित्र : शूगर कोटेड् इसलिए कि इस व्यक्तिकी वाणीकी मिठासके पीछे उसका कड़वापन छिपा रहता है, जिसको पहचानना उतना ही कठिन है जितना किसी दूकानदारकी लच्छेदार बातोंके पीछे उसका हेतु जानना या श्रीमतीजीका एकाएक अपने तेज़-मिज़ाजके प्रतिकूल नरम पड़कर आपसे घुल-घुलकर बातें करना। इस प्रकारका व्यक्ति प्रथम मिलनमें ही अपनी आत्मीयता आपपर लाद देता है जैसे न चाहनेपर भी परदेश जाते समय आपका पास-पड़ोसवाला एक बड़ी-सी पोटली या थैला (जिसके रास्तेमें खुल जानेकी आशंका हो) अमुक रिश्तेदारके यहाँ पहुँचानेके लिए आपके मत्थे मढ़ देता है और मनमें लाख गालियाँ देते हुए भी ऊपरी मुसकराहटसे वह उत्तरदायित्व आपको स्वीकार करना ही पड़ता है।

कवि या लेखक मित्र : ईश्वर न करे, भूले-भटके दुर्भाग्यवश आप किसी कवि तथा लेखककी रचनाकी मुक्त कण्ठसे सराहना कर बैठें। आप तो शिष्टाचारवश या यह जतानेके लिए कि आप रचनाकी गहराई तक पहुँच गये हैं, सराहना करेंगे, और वह आपके पीछे पड़ जायेगा जैसे बरसातका मच्छर या बिलूची चाक़ूवाला। फिर चाहे आपको ऑफ़िस जानेमें देर हो रही हो या घर प्रतीक्षा करती श्रीमतीजीकी झल्लायी सूरत याद करके रोमांच हो रहा हो, वे एकके बाद दूसरी रचना सुनाते ही जायेंगे, भले ही उनमें-से आपके पल्ले कुछ भी न पड़ रहा हो और आपको मन-ही-मन कुढ़ते हुए भी आनन्दातिरेकका भाव प्रदर्शित करके वाह-वाह

करनी पड़ेगी ।

गायक मित्र : जबसे हिन्दुस्तान आज़ाद हुआ है तबसे कई प्रकारके आन्दोलन मलेरिया और रिश्वतख़ोरीकी भाँति ज़ोर पकड़ रहे हैं। फिर चाहे वे सब अव्यावहारिक होनेसे केवल मात्र 'नारों'की ही वस्तु बनकर क्यों न रह गये हों। इन्हीं कुछ आन्दोलनों अथवा स्कीमोंमें-से कला और संगीतके पुनरुत्थानसे सम्बन्धित आन्दोलनके अन्तर्गत एक लहर (लहरकी अपेक्षा पिनक कहना अधिक उपयुक्त होगा) केप कामोरीके उद्वेलित हिन्द महासागरसे लेकर हिमालयके उत्तुंग शिखरों तक टिड्डी दलकी भाँति आच्छादित हो गयी है। इतना ही नहीं पांचाल देश भी इससे बच नहीं पाया है। यह गायनकी पिनक है। वैसे तो गधा भी गाता है, क्योंकि उसके ढेंचूमें संगीतके सप्त स्वरोंमें-से एक स्वर है जिसे भोलेबाबा महादेवजीने सप्त स्वरोंके निर्माणके लिए लिया था। इस पिनककी मूलमें वही ढेंचूका सारगर्भित निनाद है या मुकेशका दर्दनाक स्वर या लताका कोकिल कण्ठ या फिर उस्ताद फ़ैयाज़ ख़ाँ, ओंकारनाथ ठाकुर या अन्य किसी ख़ाँ या नाथ संगीतज्ञके शास्त्रीय पद्धतिका प्रभाव है यह किसी भी योजनाकी भाँति ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। यदि आप इस कथनमें सचाई ढूँढ़ना चाहें तो ज़रा बीवीका पल्ला छोड़कर मुन्नेको गोदीमें लिये घरसे बाहर निकलिए और देखिए कि ठाकुरद्वारे और धार्मिक स्थानोंपर भी भक्त-समुदाय मीराके भजन, कबीरके दोहे, या 'बानी' अथवा 'छुप-छुप खड़े हो जरूर कोई बात है, पहली मुलाकात है' या 'क़िस्मत हमारे साथ है जलनेवाले जला करें' वाली तर्ज़ोंमें किस तन्मयतासे गाता है। फिर भला बिचारा भक्त ईश्वरसे रोमांस क्यों न करने लगे।

गुनगुनानेका रोग : हाँ तो आजकल अधिकतर लोगोंको यह मर्ज़ है, और इसीलिए ऐसे लोगोंकी मित्रता भी खतरेसे खाली नहीं, क्योंकि इनको टट्टीमें, गुसलखानेमें, सड़कपर अक्सर सोते हुए भी, गुनगुनानेका स्थायी रोग रहता है जिसका कोई इलाज नहीं। ईश्वर न करे आप

किसी ऐसे मित्रसे टकरा जायें क्योंकि उस दशामें 'ऐस्प्रो', 'एनासीन' और 'अमृतांजन'का उपयोग करनेपर भी आपका सिर-दर्द 'दर्दे सर' हुए बिना नहीं रह सकता।

विश्वमित्र : कुछ लोगोंको मित्र बनानेकी हविस होती है, जैसे किसीको बाल नोचनेकी हविस तो किसीको मूँछोंपर ताव देते रहनेकी या दाढ़ीपर हाथ फेरते रहनेकी हविस या किसीको साहित्यिक कहलानेकी हविस होती है। (आख़िर हविस ही तो है!) अत: जितने लोग भी इनके सम्पर्कमें आते हैं उनसे वे तत्काल मित्रताका नाता जोड़ लेते हैं लेकिन उनकी मित्रता चुनावके लिए खड़े उम्मीदवारोंके वायदोंकी भाँति खोखली और किसी फ़िल्म एक्ट्रेसके शोख़ प्रेमकी भाँति अस्थायी और मिथ्या सिद्ध होती है।

अविवाहित मित्र : मनोविज्ञान-शास्त्रके अनुसार कहा जाता है कि विवाहके उपरान्त पुरुष गम्भीर और विवेकी हो जाता है। यानी उसकी गतिविधिपर आवश्यक (और कभी-कभी पत्नी-द्वारा अनावश्यक भी) ब्रेक लग जाता है। अविवाहित व्यक्ति ब्रेकविहीन होता है, वह भावनाओंकी तरंगोंमें बिना रोक-टोक बहता रहता है। अत: एक विवाहित व्यक्तिके लिए अविवाहित मित्र बनाना उतना ही 'ट्रैजिक' है जितना कि किसी सोशल तितलीका किसी नवयुवकसे, जो अभी प्यारकी दुनियासे सर्वथा अपरिचित रहा है और प्रेमको आत्माका आदर्श समझता है, मुसकराकर प्यार-भरी दो बातें कर बैठना और उस युवककी धारणा हो जाना कि वह उससे प्रेम करती है। अविवाहित व्यक्ति विवाहित जीवनकी बारीकियोंसे परिचित न होनेके कारण किसी भी अवसरपर आपके लिए अनजाने ही मुसीबत खड़ी कर सकता है जैसे निरन्तर आपके घर चक्कर काटते रहनेके कारण किसी छुट्टीवाले दिन सुबहसे शाम तक आपके घर धरना दिये रहनेके कारण बहुत सम्भव है कि आपकी धर्मपत्नी अपना आर्य रूप छोड़कर रावणकी परम्पराकी विकरालता धारण करके आपपर

टूट पड़े, जिसका सीधा-सा परिणाम चूल्हेमें पानी पड़नेसे लेकर हिन्दू कोडबिल पास होनेकी प्रतीक्षा भी हो सकता है। अतः जिस प्रकार विवाहसे पहले अपने भावी साथीको भलीभाँति देखना-समझना आवश्यक है, दूकानदारसे रेजगारी लेते समय उसे निरखना ज़रूरी है और बात करनेसे पूर्व श्रीमतीजीका रुख़ देखना अनिवार्य है उसी भाँति मित्र-वरणके पूर्व उसे देखना-समझना और परखना अनिवार्य है, क्योंकि यह भी एक विकट समस्या है।

सुन्दरम् : एक संस्मरण

संस्मरण लिखनेके लिए मैं नेता भी नहीं हूँ। फ़िल्म-जगत्की कोई लब्ध-प्रतिष्ठ नायक या नायिका भी नहीं हूँ और न ही साहित्यिक जीविकाके संघर्षसे टूटकर बादमें बना हुआ, प्रतिष्ठासे दबा और ऐंठा कोई साहित्य-कार हूँ। वैसे देखा जाये तो क्लासमें फिसड्डी रहनेके कारण मैं घर और स्कूलमें कई बार पिट चुका हूँ। 'संगति संग दूषणम्' को चरितार्थ करता हुआ कई बार स्कूलसे भागकर कम्पनी बाग़की सैर भी कर चुका हूँ और एक माहकी फ़ीस डकाकर मास्टर साहबका कोपपात्र और माताजी-द्वारा अपनी निजी हॉकीका निशाना बनकर अपने जन्म-दिवसके अवसरपर आमन्त्रित मित्रोंमें बे-आबरू भी हुआ हूँ। गोदाममें निरन्तर चौबीस घण्टे बन्द रहकर गणेशजीके वाहन मूषक महाशयका भी लोहा मान चुका हूँ। पतंग उड़ाते-उड़ाते बगीचेके बड़े हौज़में लुढ़ककर बलात् जल-क्रीड़ा करके, गन्दा पानी और मालीकी डाँट भी पी चुका हूँ। एक बार दोपहरीमें चोरी-चोरी अमरूदके पेड़पर चढ़कर हनुमान्जीकी वंश-परम्पराका ऊपर अप्रत्याशित दर्शन हो जानेके कारण गोबरके ढेरमें, जो नीचे खादके लिए सड़ाया जा रहा था, पछाड़ भी खा चुका हूँ। और इण्टरव्यूके नाते नौकरी-में घुसते समय इण्टरव्यू बोर्डमें ब्रह्मास्मि, नो डिग्री हेल्ड, यानी नॉनमेट्रिक अफ़सरके ओष्ठ-कोनोंसे चूती हुई पानकी पीकका रस लेता, घर तथा पड़ोसमें माताजी-द्वारा प्रस्थापित अपनी बुद्धिमत्तासे अनभिज्ञ नयी दिल्ली-को दिल्ली प्रान्तकी राजधानी, बिहारको बंगालका ज़िला और नागपुरकी

स्थिति कानपुर और रामपुरके बीच तथा 'एलेक्ट'को 'सेलेक्ट'का पर्याय बताकर भी पिनकी साहबकी नज़रसे गुज़रकर नौकरीमें इतमीनानसे जम गया हूँ। पर फिर भी इन बातोंमें-से मुझे ऐसी कोई भी बात इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ती जिसका संस्मरणके तौरपर उल्लेख किया जा सके, अथवा जिसे पढ़कर पाठक मेरे चरित्र, बुद्धि अथवा पर्सनैलिटीकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर सकें और न ही ये बातें मेरे औंधे मस्तिष्कमें दाख़िल होकर रुक सकी हैं। संस्मरणके नाते मुझे केवल तीन बातें याद हैं। एक, विवाहके पहले दरवाज़ेकी ओटसे झाँकती हुई श्रीमतीजीकी फटी-फटी-सी खिची-तनी आँखें, जो कह रही थीं, 'अच्छा आप हैं' और एक कर्कश मोटी-सी गालीका उच्चारण जो लगभग इस देखा-देखीके साथ शायद किसी छोटे भाईको लेकर किया गया था तथा जिसे सुनकर मैं भावीकी आशंकासे काँप उठा था। दूसरी बात, श्रीमतीजीके विवाहके दस वर्ष बाद दिल्लीकी तपती धूप और उड़ती धूलमें पसीनेसे लथपथ दोपहरको बाथरूममें नन्हेंके पोतड़े धोते-धोते रोमाण्टिक होकर लगभग बीस वर्ष पुराना 'ब्रह्मचारी' सिनेमाका गीत 'जमुना बिच खेलूँ खेल अकेली क्या साजना' गाना और तीसरी बात सुन्दरम् साहबका सुन्दरतम साक्षात्कार।

सुन्दरम् साहबके व्यक्तित्वकी जितनी अमिट छाप मेरे मस्तिष्कपर पड़ी उतनी अपने उन बहनोईजीके पौरुषकी भी नहीं पड़ी, जिन्होंने अपने छह वर्षोंके वैवाहिक जीवनमें एक दर्जन पिल्लोंके पिता कहलानेका अधिकार प्राप्त कर लिया है।

सर्वप्रथम सुन्दरम् साहबका नाम सुनते ही, श्रीमतीजीके विराट् स्वरूप और अटपटे व्यवहारसे संकुचित और दिल्लीकी बसमें बैठी हुई केशवकी आधुनिक चन्द्रवदनी और बिहारीकी अप-टू-डेट कामिनीके निकट, एक सीटपर फैलकर बैठे हुए सटे दुष्यन्तके विपरीत और चन्द्रवदनीके समान मेरी सिमटी हुई सुकोमल भावनाएँ इतनी फैल गयी थीं कि मुझे एकदम ब्यटी कॉम्पीटिशनकी याद आकर साहित्यके 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्'

का सुन्दरम् और विद्यापतिकी सद्यःस्नाता रामा मुझे झकझोरने लगी। तात्पर्य यह कि सुन्दरम् नाममें संचित संसारके समस्त सौन्दर्यने मुझे मधुर-मधुर गुदगुदा दिया। उस समय मुझे अँगरेज़ीके निबन्धकार चार्ल्स लैम्बका 'बेचलर्स कम्पलेण्ट' नामक निबन्ध भी याद नहीं आया, जिसे मैंने अपनी कच्ची उम्र और 'प्रवेश-द्वार' (एण्ट्रेंस) की पक्की कक्षामें शूकराकार ऊँघते हुए शकूर साहबसे पढ़ा था तथा जिसमें पत्नीकी अपने पतिके अनदेखे मित्रके बारेमें ऊँची-ऊँची कल्पनाका सुन्दर उल्लेख था। इसलिए सुन्दरम् साहबकी सुन्दरताके बारेमें मेरी कल्पना उतनी ही ऊँची पहुँची थी जितनी आईनेमें अपनी शक्ल देखते समय अपने रूपके बारेमें होती है या अपढ़ किन्तु प्रयत्नशील लालाकी धारणाएँ एक ही कक्षामें पढ़कर बैठे तथा चार-चार 'माट्टरों'से घरपर पढ़नेवाले अप्रयत्नशील लल्लाके बारेमें होती हैं। लाज़िमी था कि मैं सुन्दरम् साहबसे मिलनेके लिए लालायित होता। उनकी तारीफ़ भी मैंने सुन रखी थी। सुना था वे बड़े अध्ययनशील हैं तथा भारतीय संस्कृतिमें अपना सानी नहीं रखते, पर जब मैं उनसे मिलनेके लिए गया तो उनके दरवाज़ेपर लटकी हुई तख्ती देखकर, जिसपर लिखा था, 'मिलनेका समय सुबह छहसे पहले, रातको दसके बाद' मैं इतना निराश हुआ जितना क्रॉसवर्ड पहेलियोंका प्रथम पुरस्कार पानेकी आशा लगाये बैठा हुआ व्यक्ति अमूमन होता है, तो भी मैंने हिम्मत न हारी, क्योंकि श्रीमतीजीके निरन्तर बारह वर्षके सहवाससे दाम्पत्य जीवनमें उनकी सफलताका रहस्य, लीडरीकी सक्सेसके फ़ॉर्मूलेका मूल तथा सूरदासजीकी 'टेक' का मर्म मेरे तथाकथित चिकने सिरमें (वैसे आपकी सूचनाके लिए—मैं गंजा नहीं हूँ बल्कि सिरपर इतने बाल हैं कि गहनताके कारण बचपनसे निरन्तर प्रयत्न करते रहनेके बावजूद झुकनेका नाम ही नहीं लेते, मानो वे मिल्टनके कथन – दोज आल सो सर्व हू स्टैण्ड ऐण्ड वेट–के ही अनुयायी हों) पैठा हुआ था, अतः दूसरे दिन तड़के उठकर जमुहाइयाँ लेता और धुआँ छोड़ता, सुन्दरम् साहबके

दौलतख़ानेपर हाज़िर हुआ। दरवाज़ा खटखटानेमें मैंने शायद अनजाने ही अपने चिर-सुप्त पौरुषको जागृत कर दिया था, क्योंकि खड़खड़ाहट सुनते ही खिड़कीका परदा निचली ओरसे थोड़ा सरका तथा उसमें-से किसीकी एक आँख चमक उठी, जिसे देखते ही मुझे लगा मानो सुन्दरम् साहबमें सबको एक आँखसे देखनेका सौन्दर्य भी है। रामायण पढ़ते समय अपनी वृद्धा माँ, मौसी या दादीकी भाँति मैं गद्‌गद हो उठा। लगभग दो-तीन मिनिटके उपरान्त और कुछ कानाफूसीके बाद दरवाज़ेकी चटखनी बड़ी सावधानीसे सरकी और मेरे सामने साढ़े-चार फ़ुटी फोल्डेड लुंगीधारी भभूतसे अभिभूत काया सहमी-सी (शायद मेरे डील-डौलके कारण) आँखोंमें आर्द्रता तथा कुतूहलके मेलसे एंग्लोइण्डियननुमा भाव लिये खड़ी थी। साँवलेपनकी सीमाका अतिक्रमण करनेवाली उस छोटी-सी चमकीली मूर्तिको देखकर मुझे भारतीय शिल्प-कलाकी याद आ गयी और लगा कि हमारे शिल्पकारोंने अपनी कलामें केवल सुन्दरका संचय करके कुरूप सत्य-की एकदम उपेक्षा कर दी है। कविता लिखनेका लगातार प्रयत्न करनेके कारण मैं अपनेको प्रयोगवादी कहा करता हूँ। और एक अरसे तक इसी रागको अलापते रहनेके कारण प्रयोगवादके बारेमें सम (?) आलोचकों-की असमान धारणाओंका (बेनिफिट ऑव डाउट) मिल जानेके कारण मैं प्रयोगवादी कवि माना जाने लगा हूँ। अतः उस मूर्तिको देखकर मेरे अन्तरतमका प्रयोगवादी कवि हड़बड़ा उठा और मुझे लगा कि वह मांसल मूर्ति न होकर कोई फ़ौलादी मूर्ति है जिसकी कालिमाको रोगनकी स्निग्धताने द्विगुणित कर दिया है। मुझे बादमें पता लगा कि वे नहानेके पहले आइलबाथ और नहानेके बाद चेहरेपर तेल मलनेके अभ्यस्त हैं, क्योंकि उनका विचार है कि ऐसा करनेसे त्वचा मुलायम रहती है। उस मूर्तिसे पूछनेपर जब मुझे मालूम हुआ कि वही सुन्दरम् महाशय हैं तो इस तरह सिहर उठा जैसे जायकेदार भोजनका स्वाद लेते समय दाँतों-तले कंकड़ आ जाता है या लखनऊके अमीनाबाद पार्कके किसी रास्तेपर-से

गुज़रनेवाले ताँगेकी पिछली सीटपर बैठी किसी बुर्केवालीके पैरके सुन्दर-गोरे अँगूठेपर मन-ही-मन मुग्ध होनेके दौरान अचानक उसके मुँहपर पड़ा हुआ परदा हवाके झकोरे उठ जानेके कारण उसका चेचकके दाग़ोंसे परिपूर्ण ऊबड़-खाबड़ तथा अटपटे नक़्शवाला चेहरा दिखाई पड़ जाता है। अपनी सारी सुन्दरतम भावनाओंको दबाकर मैंने सुन्दरम्‌जीको अपना परिचय दिया और भारतीय संस्कृतिपर कुछ सुननेके लिए मैं घिघिआया। उन्होंने सशंक होकर मारवाड़ी ढंगसे मुझे एक बार सिरसे पैर तक निहारा और सूँघनीको सड़सड़ाहट और सरसराहटके साथ ऊर्ध्वगामी करते हुए लगभग काँपते हुए मुझे भीतर बैठनेके लिए कहा। कमरेमें फ़र्नीचरके नाम फ़र्शपर एक छोटी-सी चटाई फैली हुई थी। एक ओर दो आराम-कुरसियाँ बिछी थीं, जिनका चिकना कपड़ा कबीरके 'लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल' और मीराके 'मैं तो तेरे ही रंग राती'की दुहाई देता हुआ तेलके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर चुका था। सामने मेण्टल पीसपर नटराजकी ताण्डव-नृत्य मुद्रामें एक छोटी-सी काली मूर्ति रखी हुई थी, जिसे देखकर ऐसा लगता था मानो उसके स्रष्टाने सत्य और सुन्दरम्‌का डिक्टेटरीय पद्धतिसे बहिष्कार करके विशुद्ध शिवकी ही सर्जना की हो। मूर्तिके नीचे एक चौकीपर अँगरेज़ीके तीन-चार समाचारपत्र तथा पानका सामान बिखरा पड़ा था। पास ही रैकसपर अँगरेज़ीकी कई मोटी-मोटी किताबें तरतीबसे रखी हुई थीं।

मैं एक कुरसीपर बैठ गया और सुन्दरम् साहब नीचे चटाईपर लुंगी जाँघों तक बटारकर विराजमान हो गये। बातचीत शुरू करनेके निमित्त मैंने दिल्लीके मौसमके बारेमें ज़िक्र किया, 'यस, यस' आँखें तरेरकर ऐंठे-से वे कड़कड़ा उठे, "देहली क्लाइमेट्टाइज़ लाइक दैट, यू वोण्ट फाइण्ड इट इन मद्रास" और यह कहकर उन्होंने इस प्रकार मुँह बना गरदन हिलायी जैसे जो कुछ उनके चारों ओर है वह एकदम डिसेपाइण्टिग है तथा युग-युगान्तरमें भी उसमें सुधार होना सम्भव नहीं। चर्चाका विषय

दिल्लीके मौसमसे चलकर वाया बम्बई और कलकत्ता मद्रास पहुँचकर अड़ गया। मद्रास और मद्रासी विषयक उनका बखान सुनना मेरे लिए लाभदायक साबित हुआ, क्योंकि उसके पहले मद्रासके बारेमें मेरा ज्ञान बंगलौरी साड़ी तक ही सीमित था जिसकी यादगार सुन्दरम् साहबके व्यक्तित्वके बोझके नीचे दबी होकर भी सजीव थी, क्योंकि अभी कुछ दिन पहले ही श्रीमतीजी बंगलौरी साड़ीके बाहर और कुछ न देखनेपर तुली हुई थीं और मुझे साड़ीकी सुन्दरतामें छिपे अर्थके यथार्थको देखना लाज़मी था। परिणामस्वरूप श्रीमतीजीने बंगलौरी साड़ीका नाम ले-लेकर कई साड़ियोंकी धज्जियाँ उड़ायीं। और मैंने अपनी इकलौती सात वर्षीया लड़की 'नन्हीं'को सुबह-शाम चावसे भोजन करते देखकर तीन दिन तक उपवास किया। कहना न होगा कि उसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी उपवासोंका समावेश था।

सुन्दरम् साहबके मुँहसे मद्रासकी भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर मुझे लखनऊकी रेवड़ियाँ याद आ गयीं। रेवड़ियाँ समाप्त करके मैं सण्डीलेके लड्डुओंका आस्वादन कर ही रहा था कि सुन्दरम् साहब घरघरा उठे और मुझे लगा कि किसी खाली मटकेमें कुछ कंकड़ डालकर मटका ज़ोरसे हिला दिया गया हो। मैं समझा, कोई कुत्ता घरमें घुस आया है, पर सुन्दरम् साहबके यह कहते ही कि आपको ऐसी कॉफ़ी उत्तर हिन्दुस्तानमें देखनेको भी नहीं मिलेगी, ख़ास मद्राससे मँगवाया करता हूँ – मैं समझ गया कि उनका वह रेंकना झिड़कना न होकर श्रीमती मीनाक्षीजीको कॉफ़ी तैयार करनेके लिए मुलायमियतसे दिया गया आदेश था। कॉफ़ी आते-आते सुन्दरम् साहबने संसारके लगभग सभी 'इज़्मों' पर एक छोटा-सा 'अथरिटेटिव' व्याख्यान दे डाला। उन्होंने बताया कि मद्रासमें नटराजन नामके तीन शिव हैं तथा तीन विष्णु भी हैं। एक शिव और एक विष्णुको जाननेवाला मैं 'उत्तरीय' हिन्दुस्तानी मुँह बाये सोचता रहा कि सचमुच मद्रास अद्वितीय है जहाँ एककी जगह तीन-तीन विष्णु और शिव

रहते हुए भी आपसमें नहीं झगड़ते तथा अपने सीधे-तिरछे चन्दनधारी भक्तोंके परस्पर वैमनस्यको अनादि कालसे चुपचाप सहते चले आ रहे हैं। सुन्दरम् साहबने यह भी बताया कि मद्रासमें एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ घरका मुखिया घरवाला न होकर घरवाली हुआ करती है। यह बात सुनते ही मुझे विश्वास हो गया कि अपने रामकी 'जानकीजी' भी पिछले जन्ममें अवश्य मद्रासिन रही होंगी।

सुन्दरम् साहबकी बातें लच्छेदार थीं तथा उनकी भाव-भंगी और शब्दोंके उतार-चढ़ावने उन्हें और भी चटपटा बना दिया था। अतः मैं उन्हें बड़े चावसे सुन रहा था। तभी भीतरी दरवाज़ेकी ओटसे पतली काटती-सी नाचती आवाज आयी। हड़बड़ाकर मैंने उस ओर देखा तो साक्षात् मीनाक्षीजी एक लम्बी-चौड़ी साड़ीमें उलटी-सीधी लिपटी फँसी-सी दोनों नथुनों और कानोंपर जड़ाऊ गहने खोंसे गलेको स्वर्णिम जेवरोंसे कसकर बाँधे हाथोंमें कॉफ़ीके दो पीतलके गिलास जिन्हें प्लेटोंकी जगह दो पतीलीनुमा पीतलके बरतन थामे हुए थे, लिये खड़ी थीं। कॉफ़ी 'सर्व' हुई यानी एक पात्र मेरे हाथमें पकड़ा दिया गया। बरतनके नीचे रूमाल रखकर मैंने हाथोंको तो जलनेसे बचा लिया, पर होठोंको बचाना एक समस्या बन गयी। उधर सुन्दरम् साहब कॉफ़ीको दोनों बरतनोंमें गट-पट करके मुँह छतकी ओर किये गिलासको मुँहसे लगभग पाँच इंचके अन्तर-पर उठाये टेढ़ा करके गटागट कॉफ़ी गटकने लगे। तभी घरका छोटा नटराजन एक पीतलकी तश्तरीमें कुछ उर्दकी दाल और चावलसे बनी टेढ़ी सख्त सेव ले आया। सुन्दरम् साहबने बड़ी आवभगतसे तश्तरी मेरी ओर बढ़ाते हुए सेवके दो-तीन टुकड़े मुँहमें डाल दिये तथा कुड़म-कुड़म करते मद्रासी डिशेजकी सराहना करने लगे। उनके कथनसे मुझे समझते देर न लगी कि उनकी अधिकतर डिशेज़ खस्ता या मुलायमियतसे परे उन-जैसी ही कड़ाकड़-कुड़म हुआ करती हैं। शिष्टाचारवश मैंने सेवका एक टुकड़ा मुँहमें डाला, पर उसे चबाना उतना ही कठिन था जितना दिल्ली-

की किसी बसमें छुट्टीके रोज जगह पाना। पैनी दृष्टिवाले सुन्दरम्ने मेरी मुश्किलको समझते हुए कहा, "यू विल लाइक ईडली ऐण्ड मसाल डोसा बेटर।"

"और मुझे 'टाइम्स ऑव इण्डिया'का वह कार्टून याद आ गया जिसमें जगद्विख्यात 'बाबूजी' केलेके पत्तेपर खाना खानेमें अपनेको अस-मर्थ पा रहे हैं।

सुन्दरम् साहबको चटाईपर बार-बार नितम्ब बदलते और चुटकी बजा-बजाकर जम्हाई लेते देखकर मेरा ध्यान उनके पूजा, भोजन और दफ़्तर आदि अवशेष नित्य-क्रमकी ओर गया। मैं उनका लाख-लाख शुक्रिया अदा करके उनके यहाँ खाना खाने, मद्रास जाने, कॉफ़ीका सेवन करने, ग्राण्ड ट्रंक एक्सप्रेससे सफ़र करने और मद्रासी कपड़ा प्रयोगमें लानेका आश्वासन देकर मैंने उनसे बिदा माँगी।

रास्ते-भर मैं सोचता रहा कि नामकरणपर कण्ट्रोल आवश्यक है। सरकारको चाहिए कि सोशियो-नेम रिसर्चके अन्तर्गत विशेषज्ञोंका एक कमीशन बैठाकर रिसर्च कराये तथा नामकरणको पूर्ण रूपसे नेशनलाइज़ कर ले। घर पहुँचा तो श्रीमतीजी नयी साड़ी पहने बनी-ठनी 'नन्हीं'को सजा रही थीं। उनका यह अप्रत्याशित रूप देखते ही मैं ठिठक गया। और वे दौड़कर मुझसे लिपट गयीं। नन्हींको तुतलाती भाषा और लाड़-भरे ढंगसे ज़िद्द करते हुए उन्होंने कहा – 'आज मैं दफ़्तर नहीं जाने दूँगी', और मुझे भी तब हमेशाकी भाँति रूखे अफ़सरकी खुर्राट शक्ल देखनेकी बलवती इच्छा नहीं हुई। पत्नी महाशयाके साफ़-सुथरे चेहरेमें सुन्दरम्का छछूँदरी चेहरा एक बार चमका और विलीन हो गया। पर अपनी छाप मेरे मस्तिष्कपर हमेशाके लिए छोड़ गया। इसे संस्मरण न कहूँ तो क्या कहूँ ?

झगड़ेकी कला

जब मैं प्रथम बार दिल्ली देखने आया और कुतुबकी लाटसे लेकर चाँदनी चौककी चाटके पत्तों और केलेके छिलकोंसे विभूषित सड़क तक देख डाली, तब मैं किसी भी चीज़से इतना प्रभावित नहीं हुआ जितना एक बातसे।

पता नहीं आपने उसपर विचार किया है या नहीं, पर बात वास्तवमें विचार करने योग्य है, क्योंकि वह विश्वव्यापी, सर्वत्र प्रस्तुत और सर्व-कालीन है। न तो उसके समक्ष लिंग-विचार है और न उसे जात-पाँतसे ही कुछ सरोकार है। वह एक पाशविक प्रवृत्ति होते हुए भी एक ऐसी कड़ी है जो दो व्यक्तियोंके सम्बन्धको स्वभावतः तोड़नेके लिए अग्रसर होकर भी जोड़ती है। आप कहेंगे कैसी उलटी बात है और यदि इत्तफ़ाक़-से आप कोई लम्बे केशधारी, सुरीले गलेवाले साहित्यिकोंकी सोसाइटीमें पले कवि हुए तो 'विरोधाभास' कह देंगे। पर बात कुछ ऐसी ही है क्योंकि इसके बिना 'जोड़ना'का अस्तित्व ही नहीं रहता। यह मनुष्यकी आदिम चार पाशविक मनोवृत्तियोंमें-से उस मनोवृत्तिकी सहोदरी है जिससे पुरुष स्त्रीसे सम्बन्ध जोड़कर दिन-ब-दिन मानव-सृष्टिका जोड़ बढ़ानेमें बेजोड़ साबित होनेकी होड़ लगाये हुए है। यह झगड़नेकी वृत्ति है। अँगरेज़ीमें यह 'सेल्फ़ एजर्शन', आजकल सभ्य समाजकी परिमार्जित भाषामें असहमति, अशिक्षितोंकी फूहड़ भाषामें हाथापाई तथा मध्यमवर्गकी बोलचालकी भाषामें 'झड़प' कहलाती है। इसीको विज्ञान जगत्में 'फ़िक्शन', बाज़ारमें दंगा, परिवारमें कलह, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें युद्ध,

यारोंकी यारीमें बेवफ़ाई, पति-पत्नीमें अनबन, लैला-मजनूँकी दुनियामें शिकवा-शिकायत और साहित्यिकीमें क़लम लड़ाना कह सकते हैं।

झगड़ेकी यह प्रवृत्ति आदिम है और चिरन्तन भी। अतः दिल्लीमें इसका होना उतना ही स्वाभाविक है जितना और कहीं, पर दिल्लीमें इसका ज़ोर कुछ अधिक है। ऐसा होनेका कारण दिल्लीका राजधानी होना है, या दिल्लीवासियोंका जीवन १९४७ के झगड़ेके बाद संघर्षमय बन जाना या खुश्क जलवायुके कारण यहाँकी खुश्कमिज़ाजी इसका कारण है, कुछ कहा नहीं जा सकता, पर है यह सत्य और इसीलिए यहाँ ज़रा-ज़रा-सी बातको लेकर बितण्डावाद खड़ा हो जाता है। साइकिलवालोंमें, दूकानदारों और ग्राहकोंमें, टैक्सी-ड्राइवरोंमें और सवारियोंमें, कनॉट-प्लेसमें सौन्दर्य प्रदर्शनार्थ निकली हुई अमेरिकन पॉलिशवाली रंग-बिरंगी तितलियों और मनचले युवकोंमें या बच्चोंको लेकर परस्पर पड़ोसियोंमें अकसर झगड़ोंके नये-नये रूप देखनेमें आते हैं। दुर्भाग्यसे यहाँके निवासियोंकी भाँति इन रोज़-रोज़के झगड़ोंसे परिचित न होनेके कारण या झगड़ेमें पटु न होनेके कारण जब मैंने पहली बार इस प्रकारके स्वाभाविक नाटकको देखा, तो मुझे आश्चर्य होना लाज़मी था। क्योंकि जो मैंने देखा वह वास्तवमें कम रोचक एवं आश्चर्यजनक न था।

बात यह थी कि दो साइकिलवाले दो विपरीत दिशाओंसे बीच बाज़ारकी सड़कपर-से गुज़रनेवाली एक औरतकी ओर घूरते हुए साइकिलका हवाई जहाज़ बनाये चले आ रहे थे। जब दोनों चौराहेपर पहुँचे तो सहसा उनके चित्तकी एकाग्रता और दृष्टिकी स्थिरता प्लास्टिकके खिलौनेकी भाँति टूट गयी और उन्हें याद आया कि उन्हें मुड़ना था। याद आते ही दोनोंने साइकिलें मोड़ दीं और दोनों कलाबाज़ियाँ खाकर कपड़ोंकी धूल झाड़ते सर्वप्रथम उस स्त्रीकी ओर देखते, कि कहीं उसने उन्हें उस दशामें देख तो नहीं लिया है, उठ खड़े हुए, स्त्री दूर निकल चुकी थी। यह देखकर शायद दोनोंको ही सन्तोष हुआ और उनके औसान

लौट आये। दोनोंने सबसे पहले अपनी साइकिलें देखीं, एकका पिछला पहिया ग़रीबके नसीबकी भाँति टेढ़ा हो गया था, लेकिन दूसरीको कोई नुक़सान नहीं पहुँचा था। उनके चेहरोंको देखकर जान पड़ता था कि दोनों अपनी भूल जान गये हैं और इसलिए बिना वितण्डावादके ही वे साइकिलें थामें चल देंगे। भले ही जापानी पद्धतिके अनुसार एक-दूसरेको धन्यवाद देकर या परस्पर हाथ मिलाकर न जायें। लेकिन उनके जानेसे पहले ही वहाँ एक अच्छा-खासा जमघट सड़क रोके इकट्ठा हो गया और दूसरे ही क्षण जिज्ञासा-भरे प्रश्नों और निजी मतोंकी जो बौछार आरम्भ हुई तो एक शोर-सा पैदा हो गया। घटनास्थल ठीक मेरे मकानके नीचे होनेके कारण मैं उस घटनाका पूरा-पूरा आनन्द उठा रहा था। हिमायतियों और विरोधियोंकी उस भीड़ और उसके उत्साहको देखकर दोनों साइ-किलवालोंको लगा कि मानो अबतक एक-दूसरेका गला न दबोचकर उन्होंने अपने पौरुषको कलंकित किया है और यह विचार मनमें आते ही जैसे दोनोंमें एक नया जोश, एक नयी चेतनाका संचार हो उठा और बिना किसीके प्रश्नका उत्तर दिये ही वे बाज़की भाँति एक-दूसरेपर टूट पड़े। इस आकस्मिक (पर अपेक्षित) परिवर्तनके साथ ही भीड़में उत्साहकी लहर दौड़ गयी और बीच-बचाव करनेके लिए, जैसा कि प्रायः हुआ करता है, भीड़में-से ईश्वरलाल या याक़ूबका तमाशा या अमेरिकन फ़्री-स्टाइल बाऊट देखे हुए कुछ पैंतरेबाज़ निकल आये और उन्होंने दोनोंको एक-दूसरेसे अलग करके इस तरह और इतने अन्तरपर पकड़ रखा, जिससे उनके परस्पर प्रहार पूरे वेगसे नहीं तो आधे वेगसे ही सही, पर एक-दूसरे तक पहुँच अवश्य जायें। बड़ी मुश्किलसे लगभग बीस मिनिट बाद झगड़ा तय हुआ। झगड़ेके इन न्यायाधीशोंने जिनमें ताँगेवालों, झोलेवालों, चायवालों, छाबड़ीवालों या फिर साइकिल-मिस्त्रियोंकी ही संख्या अधिक थी, अपने-अपने अपार ज्ञान-द्वारा फ़ैसला करके अपने-अपने विगत अनु-भवोंका, जिनमें बीच-बीचमें गुलेरीजीकी 'उसने कहा था' कहानीके इक्के-

वालोंकी चटपटी गालियोंके साथ-साथ किसीको पीटने या 'कूटने', किसी-का सिर फाड़ने तो किसीके साथ मुतवातर दस वर्ष फ़ौजदारीकी मुक़दमे-बाज़ी करके उसका बोरिया-बिस्तरा बिकवाकर उसे जेल करा देनेका निरन्तर उल्लेख था, बखान करके यह जाने बिना ही कि झगड़ेका वास्त-विक कारण क्या था और यथार्थमें अपराधी कौन था, तितर-बितर हो गये ।

इस कलाको देखकर मुझे लगा मानो इस गणतन्त्रवादी युगमें झगड़ना भी अपनेमें एक कला है, जिसमें निपुणता हासिल करना सभीके बसकी बात नहीं । आज शायद वही व्यक्ति झगड़ सकता है जिसने इस कलाको अपने बुजुर्गोंकी देख-रेखमें सीखा हो या जिसने इसे जन्मजात पाया हो । या फिर वह व्यक्ति इस कलामें प्रवीण हो सकता है जिसपर सभ्यताके युगमें भी आदिम युगके संस्कार बने हुए हों । झगड़ोंमें विजय पानेका भी शायद यही रहस्य है । जो झगड़ेमें निपुण होगा वही कुशलतासे झगड़ भी सकता है, और उसीकी विजय भी हो सकती है, होती है । अपराध किसी-का भी हो, जो प्रस्तुत न्यायाधीशोंको अपने हाव-भाव, भाषा-स्वर, तर्क-क्रोध अथवा अंग-विक्षेपों-द्वारा अनुकूल कर लेता है वही अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेमें सफल होता है, क्या यही बात उपयुक्त किसी भी श्रेणीके झगड़ेके बारेमें नहीं कही जा सकती ? यदि बात ऐसी ही है तो फिर क्यों न ऐसी संस्थाएँ खोली जायें या ऐसी प्रतियोगिताएँ रखी जायें जिनमें झगड़ेके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोंमें उचित शिक्षा दी जा सके तथा समय-समयपर सरकार ऐसे झगड़ालू लोगोंकी प्रदर्शनियाँ लगाये जहाँ जनता उनकी विशेषताओंका दिग्दर्शन करके उनसे उचित लाभ उठाकर इस झगड़ेके युगमें या झगड़ालू आदमियोंके बीच जीवित रह सके । लेकिन ऐसी संस्थाएँ खोलनेके लिए और उनमें उच्च-पद प्राप्त करनेके लिए ही लोगोंमें झगड़ा होने लगे तो ? शायद आप कह देंगे – द्वन्द्व सृष्टिका मूल तत्त्व है !

■

पानवाला

लोग उसे शाहजी कहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वह वास्तवमें शाह हो, अथवा उसका नाम शाहजी रहा हो। यों तो उसका वास्तविक नाम शायद ही कोई जानता हो, पर इतना सभी जानते हैं कि उसके इस नाम-का सम्बन्ध न तो शिवाजीके पिता शाहजीसे है और न ही दिल्लीमें क़त्ले-आम करनेवाले नादिरशाहसे। शब्दके फ़ारसी अर्थमें भी वह शाह नहीं कहा जा सकता। फिर भी वह शाह है, जैसे बिना दौलतके भी सेठ, बिना अनुयायियोंके नेता, बिना यथेष्ट लेखनके प्रख्यात हिन्दी लेखक और बिना राज्यके भी राज-प्रमुख हो सकता है।

व्यक्तित्व

छह फ़ुट क़द, लम्बा चेहरा, आधे गालों तक रखी हुई नुकीली क़लमें, सफ़ाईसे छाँटी हुई मूँछें, पीछे गरदन तक सुते हुए चमकीले बाल, जेबमें पार्कर पेन और हाथमें बँधी सोनेकी घड़ीसे आभूषित उसका व्यक्तित्व वर्ग-व्यवस्था और आत्म-लघुताके प्रति विरोधका जीता-जागता प्रतीक है। कहनेको वह पानवाला है लेकिन अन्दाज़में किसी भी राजनीतिज्ञ, धर्म-नीतिज्ञ अथवा सिने-स्टारसे कम नहीं। उसकी दुनियामें ठेलेवालेसे लेकर, सम्पन्न व्यक्तियों तक सभी शामिल हैं। उसकी बातोंमें पानके कत्थे-चूनेसे लेकर देशके नेता, शासन-व्यवस्था, फ़िल्मी स्टार और क्रिकेटके टेस्ट मैच और टेस्टके खिलाड़ी—सभी चक्कर काटा करते हैं। उसकी पानकी

दूकान एक कसौटी है जिसपर देश-विदेशकी सभी समस्याएँ परखी जाती हैं। कहना न होगा कि उसकी दूकान एक ऐसे मुहल्लेमें है, जहाँ अधिकतर 'क़लमजीवी' लोग रहते हैं। पंजाबी दूकानदारकी भाषामें इन क़लमजीवियोंको बाबूकी संज्ञा दी जाती है। और शाहजी भी बाबूको असली मानीमें बाबू समझता है या दूसरे शब्दोंमें वह अपनेको किसी भी प्रकार इस मध्यम श्रेणीके उपेक्षित प्राणीसे कम नहीं समझता। और ऐसा समझनेका कारण ही उसकी दूकानपर, राशनकी दूकान, सार्वजनिक अस्पताल और किसी मन्त्रीकी कोठीकी भाँति सुबहसे शाम तक, 'क्यू' लगा रहता है। जब वह बायें हाथमें पान लिये, दायें हाथसे उसपर चूना फेरता हुआ, सामने खड़े ग्राहकोंके मुँहसे अपनी प्रशंसा, कलके पानकी सराहना और मोहनीपर मोहनेका वर्णन सुनता है तो वह इस अन्दाज़से आत्मस्तुति आरम्भ कर देता है जैसे कोई नेता किसी सभाके सभापतित्वके आसनसे श्रोताओंके सामने आप-बीतीके संस्मरण तन्मयतासे सुनाया करता हैं। ग्राहकवर्ग उसकी बातोंको चावसे सुनता है। शायद इसलिए कि आजके युगमें वह सुननेका आदी हो गया है। घरमें मालकिनकी, दफ़्तरमें अधिकारियोंकी और मैदानमें नेताओंकी सुननेका उसे अभ्यास हो गया है। साथ ही नये-नये अन्वेषणों, नये-नये शास्त्रों और नयी-नयी साधनप्रणालियोंके बारेमें भी नित्य सुनता ही रहता है, फिर पानवालेकी ही क्यों न सुने। और जब उसे इससे पानकी अपेक्षा हो।

प्रथम दर्शन

सर्वप्रथम जब मैंने शाहजीको देखा तो उस समय वह अपने गद्देदार आसनपर बैठा अपने क़ीमती 'सिगरेट लाइटर'से एक साहबकी सिगरेट सुलगवा रहा था। उन महानुभावके पूछनेपर उसने बताया कि उसने वह 'लाइटर' गत वर्ष बम्बईमें छप्पन रुपयेका ख़रीदा था। शाहजीको देखकर तथा उसकी बातको सुनकर मुझे एकदम सन् चालीसका अपनी गलीकी

नुक्कड़का पानवाला बेनी याद आ गया। और मुझे लगा कि जैसे इन बारह वर्षोंमें दुनिया सचमुच बहुत बदल गयी हो। एक वह पानवाला था, जो बाबूजीको हुजूर और साहब आदिसे सम्बोधित करता था और एक यह पानवाला है, जो बाबुओं-द्वारा शाहजी कहलाकर भी, बाबूजीको बाबू ही नहीं समझता वरन् हिक़ारतकी नजरसे भी देखता है। मैंने अनुभव किया कि शाहजीका सोचना बिलकुल ठीक है। आज महत्त्व ही उच्च और निम्न वर्गोंका रह गया है। उच्च वर्गका इसलिए कि वह संख्यामें कम होनेपर भी वैभवशाली है और निम्नवर्गका इसलिए कि वह वैभव-विहीन होते हुए भी बहुसंख्यक है और प्रजातन्त्रका सिद्धान्त भी तो गणोंपर ही आधारित है।

शाहजीका टेक्नीक

उधर शाहजी इतमीनानसे चूना लगाकर कत्था पोत रहा था। चूना अधिक देखकर मैंने उससे और कत्था लगानेके लिए कहा। उसने मेरी बातकी ओर जरा भी ध्यान न दिया और पान सामने सन्दूक़पर रख बड़े कलात्मक ढंगसे उसमें सुपारी डालने लगा—जैसे कोई नेता वृक्षारोपण कर रहा हो या किसी सार्वजनिक भवनके शिलान्यासके लिए कन्नीसे गारा डाल रहा हो। मुँह फट जानेकी आशंकासे, मैंने अपनी बात दोहरायी। और बातके दोहराते ही वह उबल पड़ा—"जनाब पान लगाता हूँ,"—यह उसने अजीब रुखाईसे कहा जैसे अबतक मैं पान नहीं, घास खाता आया हूँ। "आपने मेरे यहाँका पान नहीं खाया है," वह नथुने फुलाकर बोला और तब मेरी समझमें आया कि आखिर यह जो 'टेक्नीक'की बीमारी चल पड़ी है वह किसलिए। कविताका टेक्नीक, गद्यका टेक्नीक, भाषणका टेक्नीक, सम्भाषणका टेक्नीक, (और शायद खाने-पीनेका भी टेक्नीक) आदि यह जो टेक्नीकका परिवार फैलता जा रहा है, उसकी उत्पत्ति अवश्य ही या तो किसी पानवालेके टेक्नीकसे हुई है या किसी

अभिनेत्रीके अन्दाज़से ।

अबतक शाहजी पान लगा चुका था । "यह पान खाकर देखिए"— पान मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा और सामने खड़े एक पुराने ग्राहक-की ओर देखकर मुसकराया । मुझे लगा जैसे कोई बाज़ीगर 'गुटके'का कबूतर बनाकर मेरे हाथमें दे रहा हो कि देखिए यह जीता-जागता कबूतर है या नहीं । मैंने पान खाया और जेबसे पैसे निकालने लगा । उधर वह ग्राहकोंमें रम गया । एकसे उसके बच्चेके बारेमें पूछा, दूसरेसे मज़ाक़ किया, तीसरेके साथ 'मैटिनी' देखनेका फ़ैसला किया, चौथेको उसकी बातपर किसी उर्दू शायरका पुराना शेर सुनाया और पाँचवेंको किसी बीमारीका आत्म-विश्वाससे नुस्खा लिखवाया ।

जब मैं घर पहुँचा तो मुँह फटनेकी पीड़ाके कारण थूक निगलना भी कठिन हो रहा था । शाहजीको सौ बार और अपनी पान खानेकी बलवती इच्छाको पचास बार याद करनेपर भी पीड़ा कम न हुई । क्या करता— मन मसोसकर रह गया । रातको गानेकी मण्डलीमें जाना था । अतः बिना खाना खाये, दिलमें शाहजीकी याद लिये, आठ बजेके लगभग उधर चल दिया । कोई उस्ताद मुँह बिगाड़े गला साफ़ कर रहे थे । कार्यक्रम अभी आरम्भ नहीं हुआ था । जाकर बैठा ही था, उस्तादने तानपूरा उठा लिया । थोड़ी देरमें उस्ताद गरजने लगे, चीखने लगे, बड़बड़ाने लगे, भिनभिनाने लगे । स्वरोंकी दौड़-धूप, श्रोताओंकी वाह-वाह, तबलचीकी बलखाती गरदन और उस्तादके पानसे रँगे होठोंका बार-बार बिगड़ना देख भी मैं अपनी पीड़ाको नहीं भूल पाया था । तभी मैंने देखा गानेमें रसलीन शाहजी मेरे पास बैठा अपनी चाँदीकी पानकी डिबिया खोलकर मेरी ओर बढ़ा रहा है । 'लीजिए', उसने कुछ उस घनिष्ठतासे कहा, जो घनिष्ठता सफ़र करते दो मुसाफ़िरोंमें सिनेमा हॉलमें पास-पास बैठे हुए दो आगन्तुकोंमें, 'क्यू'में खड़े दो व्यक्तियोंमें या एक ही छलना-द्वारा छले गये दो प्रेमियोंमें हो जाया करती है ।

"अभी तो उसी पानका सुरूर बना हुआ है", मैंने कहा।

"असलमें यह लोग पान लगाना नहीं जानते"—पानकी गिलौरी मुँहमें ठूँसते हुए उसने धीमेसे कहा—"पान ढंगका लगा हो तो दिन-दिन-भर नशा नहीं उतरता। मैं जब जोधपुरमें था तो रजवाड़ेमें मेरे ही यहाँसे पान लगकर जाते थे और वहीं मेरी मुलाक़ात उस्ताद करीम ख़ाँसे हुई थी।" वह कह रहा था और मैं सोच रहा था कि शायद वह किसी बड़े नेतासे घनिष्ठताकी बात कहे। पर उस्तादकी किसी नौसिखिए गाँव-वालेकी बैलगाड़ीकी भाँति बहकती तानपर अपनी बात अपूर्ण छोड़कर ही वह डोलने लगा। और मैंने सोचा—जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपनेमें एक 'टाइप' है, अन्तर केवल हमारे देखनेमें होता है।

भड़कमकर : एक इण्टरव्यू

माँके निरन्तर अनुरोध करनेपर रोटी-पानीकी सुविधाके नाम मैंने विवाह करना स्वीकार कर लिया। मेरी स्वीकृतिमें रोटी-पानीकी सुविधाका जितना महत्त्व था वह आप जानते हैं और बड़े-बूढ़े तो भलीभाँति जानते हैं, पर मैं जानता हूँ कि विवाह करानेपर एकदम आमादा हो जानेका एकमात्र कारण जयदेवके 'गीत गोविन्द'का अनुवाद था जिसका पारायण मैं कक्षके एकान्त और रातकी नीरवतामें अकसर किया करता था। 'गीत गोविन्द'की शृंगार-भक्ति या भक्ति-शृंगारसे अनायास ही मुझमें 'गीत गोविन्द' 'फॉर एडल्ट्स ओनली' होना चाहिए, का प्रबल विचार उठा और साथ ही प्राचीन संस्कृत साहित्यके बारेमें अगाध श्रद्धा भी फूट पड़ी जिसके फलस्वरूप 'द्रौपदी स्वयंवर', 'सुभद्रा हरण', 'स्वप्नवासवदत्ता', 'अभिज्ञान शाकुन्तल' आदि उपाख्यानोंमें मण्डपके नीचे या किसी मन्दिरके (ओपन एअर थिएटर) यानी प्रांगणमें वक्ताओंकी बिवाइयोंसे परिपूर्ण चरण-कमलोंके पास और श्रोताओंमें पुरुषों और स्त्रियोंके बीच 'नो मैन्स लैण्ड' (यदि हुई तो) में बैठकर बड़े तन-मनसे मैंने कथाओंके कर्णास्वादन के साथ-साथ नेत्रास्वादन करनेमें भी तनिक देर नहीं की। संस्कृतज्ञ शास्त्रीजी काफ़ी सरस जान पड़ते थे। 'सुभद्रा-हरण'का हवाला देते समय पलथी बदलकर ऊपर बिजलीके पंखेकी हवासे इतराती हुई चुटियाको रीफ नॉट' बाँधकर और जाँघको बार-बार थपथपाते हुए उन्होंने सस्ते सरस भावसे रमणियोंकी ओर कनखियोंसे देखते हुए सस्मित बताया कि

वैदिक विवाहके आठ प्रकार हुआ करते थे। और चुटकी बजा-बजाकर तालिका गिना रहे थे। मैं उत्कण्ठित-सा मुँह बाये कभी उनकी चाँदकी ओर देखता और कभी पुलकायमान भक्तिनियोंकी ओर। शास्त्रीजीकी वाक्-गतिको मेरा नौसिखिया स्टैनो-टाइपिस्ट मन ग्रहण न कर सका। अतः मैंने कथा समाप्त होते ही प्रश्न-प्रेषकोंमें अपनी बारी लगाये यथासमय रोमांचित होकर शास्त्रीजीसे विवाहके आठ प्रकारोंको फिरसे गिनने तथा तद्विषयक लघु मीमांसा करनेका गिड़गिड़ाकर अनुरोध किया। शास्त्रीजीने गुरुवाणीमें मनुस्मृतिको लेकर अपनी स्मृतिके साथ खींचातानी करते हुए ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाचादि विवाहोंके नाम गिनकर फुसफुसाते हुए उनकी सरस विलम्बित व्याख्या की और 'तारसप्तक'के स्वरमें महाभारत उद्धृत करते हुए बताया कि प्राचीन कालमें उत्तर कुरु देशमें 'गोधर्म'की प्रथा थी जिसे 'यूथ विवाह' कहा जा सकता है। विवाहकी इस दीर्घ व्याख्या और रमणियोंके सान्निध्यका मुझपर वही प्रभाव पड़ा जो 'एडल्ट्स ओनली' चित्रपट देखनेके पश्चात् किशोर-किशोरियोंपर पड़ता है या जयदेवके 'गीत गोविन्द'को पढ़ते समय कक्षामें बैठी हुई वयःसन्धिपर पहुँची हुई अनुराधापर पड़ता है। मानसशास्त्रका तक़ाज़ा था कि मैं उन सभी प्रकारोंको जाने-अनजाने 'ट्राई' करता। अतः निरन्तर प्रातः-सायं इण्डिया गेट, कनॉट प्लेस, कॉफ़ी हाउस और सामाजिक एवं साहित्यिक समारोहोंका पर्यटन करनेके उपरान्त भी जब मैं दैव, गान्धर्व, राक्षस, पैशाचादि किसी भी विधिके अनुकरणमें सफल न हो सका तो जैसे मेरा पौरुष अकुला उठा। पराक्रम, शौर्य, साहस और इनीशियेण्टिवके अभावने मुझमें दीनताका भाव भर दिया। स्वाभाविक था कि मैं अपनेको विवाहके अयोग्य समझता और इस विचारको किसी सत्कार्यकी भाँति अनन्तकाल तक स्थगित कर देता। परन्तु कल माँका पत्र आनेके बाद एक ऐसी घटना घटी जिसने मेरे सुप्त पौरुषको झकझोरकर जाग्रत कर दिया। बात यह थी कि मैं बसमें बैठा बैलोंकी

नुमायश देखने जा रहा था। अगली सीटपर दो-तीन रंग-बिरंगी सिन्धी दुहिताएँ बैठी थीं। बसके अग्रासनपर फुटकर काठीके काष्ठकाय चक्रपाणि (ड्राइवर) समासीन थे। छुहारे-सी शक्ल और निचोड़ी-सी देहके बावजूद उनके चेहरेपर अर्जुनका पराक्रम, भीमकी मूँछें, दुर्योधनकी कुटिलता, कर्णका शौर्य, कान्हाकी लीला और भीष्मके चिररुद्ध पौरुषके साथ-साथ अशोक कुमारका नायकत्व और प्राणका खलत्व एक-साथ विद्यमान था।

अपने गुणोंसे अवगत चक्रपाणि महाशयका 'मिक्स्ड' व्यक्तित्व इतना महान् था कि वह उनकी छोटी-सी काठीमें न समाकर बाहर ढुलका पड़ रहा था क्योंकि वह बार-बार एक्सीलेटर दबाते और बस मोड़ते समय सड़ककी ओर देखनेकी बजाय पीछे बैठी दुहिताओंपर ऐंठकर दृष्टिपात करते मानो उनके हाथमें स्टीयरिंग न होकर महाभारतके सूत्रधार श्रीकृष्णका सुदर्शनचक्र हो। उस समय उनके हाथोंकी फैली हुई नसें डालडामें अवस्थित (!) सभी विटामिनोंके एक-साथ ज़ोर मारनेसे और भी फूल जाती थीं। बसके ड्राइवरका अहं देखकर मेरे अन्दरका पराजित पौरुष बिलबिला उठा। तीन वर्ष पूर्व-पश्चात् पाये हुए मैट्रिकके सर्टि-फ़िकेटको याद आते ही (जो मैंने सुनहरी फ्रेम और खूनी रंगके माउण्टमें जड़वाकर बैठकमें लटका रखा है) मेरी वह अकिंचनता तिरोहित होकर मुझमें एक नयी चेतना हाँफने लगी और मैंने तय कर डाला कि विवाहके अखाड़ेमें अवश्य उतरूँगा।

बैलोंकी नुमायश देखकर मैंने माँको कार्ड लिख दिया और भावीकी सुखद कल्पनामें डूबने-उतराने लगा। पूना शहरसे अपरिचित और अपनी जेबसे परिचित होनेके कारण मारवाड़ी सेठकी दूरदर्शिता बरतकर अपनी एक दूरकी मौसीके पास, जिससे मिलनेके लिए मैंने पिछले बारह वर्षोंमें बसके आठ आने खर्च करनेकी जुर्रत नहीं की थी, पूनामें अपने कोई नज़दीक या दूरके रिश्तेदारका पता करने जा पहुँचा ताकि पूनामें किसी

होटल या धर्म (?) शालामें ठहरनेके धर्मको टाल सकूँ। मौसीने अपने पोपले मुँहको हिलाते हुए मेरी छोटी-सी वंशावलीका विस्तृत हवाला देते हुए उँगलियोंपर गिनकर बताया कि बण्डू, जो रिश्तेमें मेरे चचेरे भाईके ममेरे भाईका फुफेरा भाई लगता है, आजकल पूनामें ही है। उसकी आयु-का अंकगणित करते हुए मौसीने यह भी बताया कि जब वह पैदा हुआ था उस समय हमारी माँ सातवें महीनेका प्रथम सप्ताह पार कर चुकी थीं यानी मेरे बड़े भाई साहबसे बण्डू महाशय दो महीने और लगभग बाईस दिन बड़े थे। अंकगणितका वह ज़बानी जमा-ख़र्च देखकर मुझे लगा कि मैट्रिकमें तीन साल हिसाबमें लुढ़कनेकी बजाय यदि मौसीसे अपनी जगह इम्तिहान दिलवाता तो मुझे तीन बार फ़ेल होने और अन्तमें तीसरी श्रेणी पानेकी नौबत ही न आती। मौसीकी जानकारीके अनुसार बण्डू भाई एक ज़मानेके बिगड़े हुए नालायक़ और कुपूत थे क्योंकि सन् '४२के आन्दोलनमें भाग लेकर वह अपनी तीस रुपये माहवारकी रेलवईकी माल बाबूकी नौकरी गँवा बैठे थे और जातिके ब्राह्मण होते हुए भी आज एक गोरे साहबके साथ साझेमें एक 'हेअर कटिंग सैलून' खोले बैठे हैं और दूकान रुक-रुककर चल भी रही है। सैलूनका उल्लेख करते समय मौसीने तीन-तीन बार धिक्कार कर तीन-तीन बार 'राम' 'राम' कहकर मुँह बिगाड़ा। मैंने खुलकर मौसीकी सराहना की और मन-ही-मन दाढ़ीका सामान न ले जाना तय कर लिया।

दरीका होल्डाल सँभाले हाथमें 'सावरकर छाप' थैला लिये तीसरे दरज़ेका टिकिट कटवा जनतामें हिचकोले खाता मैं लड़की देखने पूना जा पहुँचा और अपने-आपको ताँगेवालेके भरोसे छोड़कर अपने भाई मैसर्स काले-गोरे एण्ड कम्पनीकी तलाशमें निकल पड़ा। मौसीके बताये हुए पतेमें-से मुझे गुरुवार पेठ याद था, क्योंकि सारा पता याद रखना मुझे दिल्लीवालेकी तौहीन थी। बचपनमें मैंने सामान्य ज्ञान (जनरल नॉलेज) में पढ़ा था कि पूनामें सप्ताहके सात दिनोंके सात पेठ हैं। पेठका अर्थ

है बाज़ार। अतः वहाँ लगनेवाले बाज़ारोंके दिनानुसार ही मोहल्लोंका नामकरण हुआ था और उस समय 'फैक्टरी एक्ट' न होनेके कारण सप्ताहके सातों दिन बाज़ार लगा करता था।

शहरकी खाक छानकर भी जब मुझे पता न मिला तो मैंने लक्ष्मी रोडपर ताँगेवालेसे ताँगा रोकनेके लिए अनुरोध किया और नाकका पसीना एक छोटे-से गुलाबी तौलियेसे (जो मैं रूमालके स्थानपर इस्तेमाल किया करता था) पोंछते हुए एक राह चलनेवालेसे धीरेसे पूछने लगा 'गुरुवार पेठ कौन बाजूको पड़ता है ?' यह घटना गुपचुप गलीके पासकी थी। पथिकने क्लासिकल मराठी बोलते हुए हेलाके साथ बताया कि गुरुवार पेठ पर्वतीके पास है। अपने ज्ञानका अभाव ताँगेवालेपर व्यक्त न होने देनेके हेतु मैंने उससे पूछताछ करनेकी बजाय उसे सीधा पर्वतीकी ओर चलनेका आदेश दिया और सन्तोषकी साँस लेते हुए सिगरेट सुलगाया। तीन घण्टे मुतवातिर परिश्रम और स्थानीय पूछताछके पश्चात् पता लगा कि गुरुवार पेठ पर्वतीके पास ही नहीं वरन् पूनामें भी नहीं है, किसी ज़मानेमें शायद रहा हो। आखिर मैं लक्ष्मी रोड पहुँचा और मेसर्स काले-गोरे ऐण्ड कम्पनी 'महिला केश विन्यास गृह'के बारेमें आखिरी पूछताछ करने ही वाला था कि सामने उसीकी पाटी (साइन बोर्ड) देखकर मेरा पसीना सूख गया। तर्कशास्त्र और तत्त्वज्ञानके साथ-साथ मराठी और हिन्दीसे काफ़ी खींचातानी करके क़ानूनसे अनभिज्ञ चार पथिक जन-पंचों-को इकट्ठा करनेके बाद मैं गोंदू ताँगेवालेका उसके कहे अनुसार हिसाब करके हाथमें थैला और बग़लमें बिस्तरा दबाये माथेका पसीना पोंछता हुआ दूकानकी ओर लपका।

सैलून नील कौशेय वस्त्रोंके परदोंसे समावृत और अगरबत्तीसे धूपित एक आधुनिक ढंगकी दूकान थी। बाहर लगी हुई तख़्तीको देखकर, जिस-पर लिखा था, 'सभी प्रकारके महिला कटोंके विशेषज्ञ', मैं दुबकता हुआ पर उत्कण्ठित-सा दूकानमें दाख़िल हुआ। सामनेवाले कक्षमें एक अधेड़

उम्रके काले-से व्यक्ति कोट-पैण्ट कसे माथेपर तिलक लगाये एक पारसी महिलाके भूरे बाल छाँट रहे थे। मौसीके चित्रांकनमें वह काफ़ी 'फ़िट' बैठते थे और रंग भी काला था। अतः मैंने समस्त स्नेह समेटकर गद्गद भावसे सम्पूर्ण आत्मीयता बिखेरते हुए उन्हें नमस्कार किया और अपना परिचय देते हुए तपाकसे हस्तान्दोलनके लिए हाथ पसार दिया। मेरे बढ़े हुए हाथको ओर दुर्लक्ष करते हुए उन्होंने रुखाईसे 'मिलन कक्ष' (ड्राईंग रूम) में बैठनेके लिए कहा। महिलाको बिदा करनेके बाद उन्होंने मुझे बताया कि वह श्रीयुत कालेके पार्टनर श्री गोरे हैं तथा काले साहब दूकानके दशकसमारोहसे सम्बन्धित 'पत्रक' छपवाने प्रेस गये हैं और मध्याह्नोत्तर यानी तीन बजेसे पहले नहीं लौटेंगे। गोरे साहबसे पता लगा कि काले भाईका मकान खुन्या (खूनी) मुरलीधरके पास है।

गोरे और कालेके साझेमें कन्हैयाके साँवलेपन और मुरलीधरसे खूनी शब्दका संयोग देखकर मैं चिर-वियोगी उर्दू शाइरीके क़ातिल (जो हिन्दीमें लिंग बदलकर प्रिया हो जाता है) पर विचार करता भाई कालेके घर जा पहुँचा। घरमें कालेकी गेहुँई पत्नी और पाँच काले-गोरे बच्चोंके साथ-साथ वृद्धा माँ भी थी जो मौसीके कथनानुसार मेरी फूफी, मामी, मौसी, चाची या ऐसी ही कुछ थीं। मेरा परिचय पाकर और मुझे दिल्लीसे आया जान उन्होंने इस प्रकार घूम-फिरकर मेरी और मेरी माँकी सराहना की मानो दिल्लीमें नौकरी करके मैंने इन्द्रपुरीका साम्राज्य प्राप्त कर लिया है और दिल्लीमें या दिल्लीसे घटित होनेवाली सभी बातोंसे मेरा साले-बहनोईका सम्बन्ध है। वृद्धाके पैर छूते ही मेरी सादगीपर निहाल होकर वृद्धाने फ़ैशनसे शुरूआत करके आजकलके लड़कोंपर अनेक प्रकारके आरोपण करते हुए यह भी बतलाया कि आजकल स्त्रियाँ सकेशा होनेके कारण बण्डूभाईका काम काफ़ी मन्दा पड़ गया है। यह और बात है कि बण्डू-जैसे कई दूकानदारोंने मिलकर पिछले छह महीनेसे 'केश विमोचन मण्डल' (यूनियन) की स्थापना की है। और इसका प्रतिनिधि मण्डल, जिसमें

अग्रगण्य बण्डू ही हैं, बम्बईके मुख्य मन्त्रीसे मिलने तथा अपनी माँगें पेश करने जा रहा है। विश्वस्त सूत्रोंसे पता लगा है कि बम्बई राज्य मद्रास राज्यका सहयोग प्राप्त करनेवालोंकी समस्यापर नये सिरेसे विचार करनेके लिए एक 'बाल-कमीशन' बैठानेवाला है जिसके पाँच सदस्योंमें-से तीन नाई होंगे, एक महिला और एक कोई लब्ध-प्रतिष्ठ गंजा व्यक्ति।

वृद्धा यह जानकर अत्यन्त पुलकायमान हुई कि मैं लड़की देखने आया हूँ। अपनी कण्ठस्थ सूचीका तनिक ज़ोरसे पारायण करके उन्होंने भड़कमकर साहबसे अपना दूरका रिश्ता भी ढूँढ़ निकाला।

शामको कालेसे मुलाक़ात हुई तो वे साँझके अँधेरेमें भी गोरे नज़र आये। मुझसे मिलकर उनके माथेपर बल अवश्य पड़े पर इतनी आत्मीयता उन्होंने अवश्य दिखायी कि रातों-रात भिखारीदास मारुतिने जाकर लड़की देखने-दिखानेकी व्यवस्था करा डाली।

दूसरे दिन सिल्ककी पतलून पहने, जो बिस्तरमें बँधनेके कारण सिकुड़ गयी थी, और नया सर्जका कोट ताने मैं काले भाईके साथ लड़की देखने जा पहुँचा। भड़कमकर साहबके मकानके सामने ताँगेसे उतरते ही एक मुण्डित मस्तक वृद्धा उत्कण्ठित-सी सामने आयी और आँखोंपर सीधे करतलका वितान ताने अपने पोपले मुँहको हिलाते हुए बारीक़ीसे मेरा सिंहावलोकन करने लगी। भावी ससुरालकी बड़ी-बूढ़ी समझकर मैंने यथाशक्ति विनय विखेरकर उन्हें नमस्कार किया। यह मैंने बादमें जाना कि वह मेरी भावी सास या ससुरकी अम्मा न होकर उनके पड़ोसी राव-साहबकी महाराजिन थी और मेरे आगमनका समाचार पाते ही तपाकसे चायमें नमक डालकर अपनी सम्पूर्ण सीनियरिटी चरितार्थ करती मेरे निरीक्षणके लिए आ उपस्थित हुई थी।

देखने-दिखानेकी व्यवस्था भड़कमकर साहबके पड़ोसी राव साहबके दीवानखानेमें की गयी थी, यानी बाबा आदमके ज़मानेके एक पुराने मकानकी बैठकमें। कहना न होगा कि दीवानखानेकी मात्र दो खिड़कियोंके

खुले शीशे ही ग़ायब न थे वरन् चौखटें भी भूतपूर्व हो चुकी थीं। बीचमें राव साहबके पितामहका झूला लटक रहा था और कोनेमें लकड़ीका एक ढीला तख़्ता बुढ़ापेकी समस्त जर्जरताको समेटे आड़ा पड़ा था। सामने एक पुरानी थिगलियोंसे परिपूर्ण दरी अपनेको अधमैली चादरसे ढँके किसी सोशल वर्करके कार्य-कलापोंकी भाँति फैली हुई थी तथाकथित चाँदनीपर, जिसपर घरके नन्हें-मुन्नोंकी अविराम लीलाओंके कारण कई धूसर बादल उमड़ आये थे। राव साहब हथेलीपर तम्बाकू और चूना मलते नंगे बदन विराजमान थे और एक ओर पाँच-छह बच्चे उल्लसित हो-होकर चाँदनीपर कुलाँटिया खा रहे थे। मुझे देखते ही राव साहब उठे और तपाकसे कमीज़ और टोपी पहनकर और मुँहमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाली पीकको बाहर एक ओर मुक्त करके सामने आये और बड़ी आवभगतसे मुझे चाँदनीपर बिठाकर मेरे साथ बैठ गये। पैण्टको पाजामा बनाये मैं भी दरीके बीचो-बीच आरूढ़ हो गया।

मेरे दीवानख़ानेमें पहुँचनेकी ख़बर फैलनेकी देर थी कि दीवानख़ाने-की खिड़कियों, दरवाज़ों और औसारों और झरोखोंसे झाँकी शुरू हो गयी। यानी असंख्य बालिकाएँ, वृद्धाएँ, और युवतियाँ निरन्तर मेरे कान, नाक, मुँह, बाल और काठीका X रे करने लगीं। कहना न होगा कि दर्शिकाओं (!) में वृद्धाओंकी संख्या ही अधिक थी। इस देखा-देखीसे मैं इस क़दर नर्वस हुआ कि भूल ही गया कि मुझे भी किसीको देखना है। अपनी नर्वस-नेस छिपाने तथा अपनी योग्यता बघारनेके लिए मैंने राष्ट्र-भाषाकी कोविद परीक्षाके समूचे ज्ञानको बटोरकर और बसमें देखे हुए चक्रपाणीको बराबर स्मरण करके हिन्दीमें बोलना तय किया। गुलाबी रूमाल-नुमा तौलियेमें जोरसे नाक साफ़ करते हुए कुछ बोलनेके लिए मैं पलथी बदल ही रहा था कि एक सज्जन धोती, कमीज़ और एक असमर्थ निरीह सिकुड़े हुए मजदूरकी भाँति सिकुड़ा, ओछा ऐश कलरका एक कोट, काली टोपी और पैरोंमें बिवाइयोंसे तादात्म्य स्थापित करनेवाली श्रीहीन

(पॉलिशहीन) चप्पलें पहने और हाथोंमें दस साल पुराने थैलेका एक कान पकड़े (दूसरा कान निरन्तर पकड़े जानेके कारण टूटकर लटक गया था और उसे ठीक करनेके लिए की गयी सर्जरीके टाँके अब भी दृष्टिगोचर हो रहे थे) सतर्कतासे दीवानख़ानेमें पधारे और मेरी दृष्टि उनपर अटक गयी। कमीज़का गलेका बटन निरन्तर बन्द रहनेके कारण किसी बुरका-वालीकी तरह उनके गलेकी नसें बाहर झाँक रही थीं। दीवानख़ानेमें दाख़िल होते ही आगन्तुकने सतर्कतासे चारों ओर देखा और चाँदनीपर बैठ गये। राव साहबने पीकसिक्त होठोंसे पीकको तिरोहित करते हुए परिचय कराया।

"आप ही भड़कमकर हैं, हमारे पुराने स्नेही—सुमतिके पिता"-भड़कमकर साहबकी तौलती हुई दृष्टि मुझपर गाजकी तरह गिरी और राव साहबकी दृष्टिसे टकराकर 'अर्थ' हो गयी। मैंने झटसे हाथ जोड़ दिये और उत्तरमें गम्भीरतासे उनका सिर गिरगिटकी तरह ईषत् झुका और उठकर अकड़ गया।

उन्हींके पीछे-पीछे सुमति हाथमें स्टेनलेस स्टीलकी ट्रेमें चार सिंगल कप और चार चिवड़ेकी तश्तरियाँ लिये सहमी-सी, दबी-सी, झुकी-सी, घटना-स्थल (?) पर अवतीर्ण हुई और राव साहबके कहनेपर ट्रे नीचे रखकर भड़कमकर साहबके पास गरदन झुकाये चाँदनीके नीचे छिपी ज़मीनको पैरके अँगूठेसे कुरेदनेका असफल प्रयत्न करती बैठ गयी। मानो इस 'दीवानख़ाने' शब्दमें आभासमान श्री ही साकाररूप धारण करके बैठी हो।

"यह हमारी सुमति है, उसकी पीठ थपथपाते हुए राव साहब गिड़-गिड़ाये। मेरी आँखें सुमति-गामी होनेके लिए उठीं और राव साहबसे च्चार होते ही धराशायी हो गयीं। सुमतिने मुखे देखा या नहीं, मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता पर मेरा अनुमान है कि उसने अवश्य मुझे दृष्टि गड़ाकर देखा था क्योंकि तब मैं भीतर-ही-भीतर पसीना-पसीना हो उठा

था। अपने अन्तरतमका समस्त साहस बटोरकर मैं अपनी धराशायी आँखें उठानेका प्रयत्न करने ही वाला था कि भड़कमकर साहबने सन्दिग्ध दृष्टिसे मेरा नीचेसे ऊपर तक निरीक्षण करते हुए अक्खड़ स्वरमें मुझसे पूछा :

"आप कितने भाई-बहन हैं ?"

"मैं अकेला ही हूँ।"

"ठीक, पिताजी क्या करते हैं ?" उन्होंने फिर गम्भीर स्वरमें पूछा।

"अध्यापक थे", मैंने रूमालसे मुँह पोंछते हुए कहा।

"माँ तो होंगी ही।"

"जी।"

"दादा-दादी, चाचा-चाची, और कोई ?"

"दादा-दादी जीवित नहीं। चाचा-चाची हैं पर वह अलग रहते हैं।" मैंने खिसियायी-सी आवाजमें कहा।

"नहीं, मैंने कहा सुमतिकी रुचि कला-कौशलकी ओर अधिक है। गृह-कार्य जानती अवश्य है पर....।"

"मुझे भी कलासे प्रेम है। विशेषकर लेखन-कलासे। हिन्दीमें लिखता हूँ। कोविद परीक्षा भी पास की है।"

"सुमति भी मराठीमें लिखती है। उसका लेख दीपावली अंकमें प्रकाशित हो चुका है। वैसे उसने हिन्दीमें 'परिचय' परीक्षा भी पास की है। कल मामा वरेरकरके 'भूमि कन्या सीता' नाटकमें वह उर्मिलाका काम कर रही है।" उन्होंने ऐंठकर कहा।

"तब तो मैं नाटक अवश्य देखूँगा।" मैंने कृतकृत्य होते हुए कहा। वैसे सुमतिका नक़्श भी कुछ वैजयन्तीमालासे मिलता-जुलता था और उसका नाट्य-कलामें प्रवीण होना वह क्वालिफ़िकेशन थी जिसपर दिल्ली-जीवनमें मेरी सफलता निर्भर थी।

"अवश्य देखिए, पर आपकी माहवार आमदनी....जायदाद, खेती,

कुछ ?"

"तीन सौ। वैसे कुछ लेखोंसे भी मिल जाता है। घरका मकान भी है, ग्वालियरमें। चचेरे भाई रहते हैं।"

"तीन सौ ही कहिए, लेखोंकी आमदनीका क्या भरोसा ? और रिश्तेदारी ठीक है पर रुपये-पैसे, जायदादका काम चोखा होना अच्छा रहता है। क्यों राव साहब ?" उन्होंने राव साहबकी ओर मुड़कर कहा। "ठीक है, क्यों राव साहब, मियाँ-बीवीका गुजारा हो सकता है। (तनिक रुककर) एक बात और, आप जानते हैं मैं पोस्ट मास्टर था पर दस साल पहले रिटायर हो चुका हूँ। इसलिए यदि आप दहेजकी अपेक्षा रखते हों तो वह हमारे वशकी बात नहीं। साफ़ की हुई बात अच्छी होती है। क्यों राव साहब, उन्होंने सिरको अकस्मात् उछालकर राव साहबकी ओर देखा।

"मैं दहेजमें विश्वास नहीं करता।" मैंने सगर्व कहा।

हुँकारो देते हुए उन्होंने फिर एक बार सिर हिलाया और अपनी पैनी दृष्टिसे मेरा Xरे ले लिया और इण्टरव्यूका उपसंहार करते हुए वह कहने लगे :

"अच्छा होता यदि आप पूनामें नौकर होते", स्वरके गाम्भीर्यने मेरी मुलायम कल्पनाओंको अकस्मात् झकझोर दिया। सिटपिटाकर अनजाने ही मेरे मुँहसे शब्द निकल पड़े :

'पूनाकी अपेक्षा बम्बई····" और यह कहकर जैसे मैंने उन्हें आहत कर दिया हो।

"आप बम्बईवालोंको नहीं जानते····" उन्होंने तिलमिलाकर कहा, और अन्तरतमके समस्त उद्वेगको हथेलीकी तम्बाकूपर रगड़कर क्षण-भर मौन रहनेके पश्चात् अटक-अटककर कहने लगे—

"और सब बातें ठीक हैं पर असल बात यह है कि हमारी सुमति कलाओंमें निपुण होते हुए भी बड़ी अल्हड़ है। मैं उसे जी-जानसे चाहता

हूँ। यदि वह सुखी न हो सकी तो मेरी तो कमर ही टूट जायेगी।"

"उसी समय सुमतिकी बड़ी-बड़ी चंचल आँखें मुझे हिप्नोटाइज़ कर गयीं।"

"आप निश्चिन्त रहें" मैंने सकुचाते हुए कहा और भड़कमकर साहबके पदांगुष्ठपर दृष्टि गड़ा दी।

"अच्छा, अच्छा...." आश्वस्त होकर समस्त इण्टरव्यूमें पहली बार भड़कमकर साहब ईषत् मुसकराये और मुझे लगा मानो मेरी साँस फिरसे चलने लगी है।

"पर उन्हें भी तो पूछ लिया जाये", मैंने सकुचाते हुए सुमतिकी ओर इशारा करते हुए भड़कमकर साहबसे कहा और संकुचित दृष्टिसे सुमतिकी ओर पहली बार देखा तो वह उठकर जा रही थी।

"बड़ी शर्मीली है" – जाती हुई सुमतिकी ओर दुलार-भरा दृष्टि-क्षेप करते हुए राव साहबने गद्गद होकर कहा और चायकी ओर मुड़े।

"लीजिए न" और एक सिंगल कप (यानी आकारमें साधारण प्यालेसे लगभग आधा) मेरे हाथमें आया और चौथाई छटाँक चिवड़ेकी एक चमकीली तश्तरी सुपारीपर लड्डू धारण किये मेरे सामने रख दी गयी। उस सिंगल कप और आहारकी मात्रा देखकर मुझे लखनऊकी नज़ाकत याद आ गयी। और लगा कि यदि खाद्य समस्या पूनावासियोंके हाथमें सौंप दी जाये तो भारत सरकारके 'अधिक उपजाओ'के मोटे व्यय-की ही बचत नहीं होगी, वरन् उत्तरापथमें फैलनेवाले वायु-विकारका भी अनायास ही इलाज होकर स्वास्थ्य-मन्त्रालयका पेट बढ़नेसे रुक जायेगा। सत्य तो यह है कि इस खाद्य-सामग्रीकी मात्राका इतना गहरा इम्प्रेशन मुझपर पड़ा जितना कि सुमतिका भी नहीं पड़ा था। पेटकी भूख और दिमाग़की खीझपर बलात्कार करते हुए मैंने कहा, "इसे रहने दीजिए, अभी-अभी नाश्ता करके आया हूँ, चाय पी लूँगा।" राव साहब और भड़कमकर साहब दोनोंको एक साथ सदमा पहुँचा।

"यह कैसे हो सकता है" तश्तरीको मेरी ओर सरकाते हुए उन्होंने आवभगतसे आँखें तरेरते हुए कहा और फ़ैसला आधे लड्डूपर हो गया। खान-पानके दौरान (दौरान इसलिए कह रहा हूँ कि खाना एक ग्रासका होते हुए भी उसे हलक़से नीचे उतारनेके लिए काफ़ी समय लगा क्योंकि पहले तो भड़कमकर साहब नाश्ता करनेके लिए ही तैयार न थे, राव साहबके हीलो-हुज्जत और मेरे निरन्तर अनुरोध करनेपर उन्होंने बचा हुआ आधा लड्डू लेना स्वीकार किया) मुझे पता लगा कि भड़कमकर पूनाकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमिके कारण पूनाको भारतकी राजधानी बनानेके हक़में हैं। संक्षेपमें वह इतने व्यक्तिवादी थे कि कोई भी योजना, कोई भी स्कीम, चाहे वह अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, कौटुम्बिक क्यों न हो उनकी सर्जरीका विषय बने बिना रह ही नहीं सकती थी। तथा किसी भी दूसरे व्यक्तिसे सहमत होना वह बौद्धिक दरिद्रताका लक्षण समझते थे। पर्यटनकी चर्चा शुरू होते ही उन्होंने अत्यन्त गम्भीरतासे बैठकमें लगी हुई तसवीरोंकी ओर इंगित किया। तसवीरें भड़कमकरजीकी 'कश्मीर ट्रिप'का राव साहबके मकानमें विज्ञापन करनेके लिए दीवारपर लटकी हुई थीं। पहले फ़ोटोमें भड़कमकर हार पहने अपने कुटुम्ब-सहित बसके अड्डेपर चित्रित हुए थे। दूसरे फ़ोटोमें श्रीमती भड़कमकर पहाड़ी टट्टूपर अपनेको लादे मुसकरा रही थीं और भड़कमकर टट्टूकी लगाम हाथमें थामे खड़े थे। तीसरे चित्रका 'पादक' (पादक इसलिए कह रहा हूँ कि शीर्षपर न होने-के कारण उसे शीर्षक कहना युक्तियुक्त नहीं होगा, यद्यपि अँगरेजीमें उसे कैप्शन ही कहते हैं) था 'कश्मीरमें बर्फ़ खाते हुए'। और भड़कमकर दम्पति हाथमें लगभग पाँच-सात सेर बर्फ़के टुकड़े थामे खड़े थे। एक अन्य फ़ोटोमें स्त्रियोंकी भोजन-प्रतियोगितासे सम्बन्धित समारोहके व्यासपीठसे वह बोल रहे थे तथा उसी फ़ोटोके दूसरे हिस्सेमें वह अपनी पुत्र-वधूको सर्वोत्कृष्ट पुरणपोली (महाराष्ट्रकी एक विशिष्ट मीठी रोटीका प्रकार) बनानेके लिए पुरस्कार दे रहे थे। कहना न होगा कि फ़ोटो देखकर

और सुमतिकी योग्यतापर विचार करके मैं मन-ही-मन कृतकृत्य हो रहा था।

दूसरे दिन मामा वरेरकरके 'भूमि कन्या सीता' नाटकमें सुमतिका उर्मिलाका रोल देखने एक ओपन थियेटरमें मैं भड़कमकर परिवारके साथ जा पहुँचा। उर्मिलाका व्यक्तित्व सचमुच डायनॉमिक था और काम भी इतना उभरा था कि स्टेजके लक्ष्मणके प्रति मन-ही-मन जलते रहनेके कारण साधारणीकरणके अभावमें भी मैं रस-सिक्त होता रहा। पहला अंक समाप्त होते ही भड़कमकर साहब बड़ी आवभगतसे सुमति-द्वारा मेरा अन्य पात्रोंसे परिचय करानेके लिए मुझे स्टेजके पीछे ले गये। स्टेजके पीछेका ड्रामा तो सचमुच रोमांचकारी था। नाटकके राम, लक्ष्मण, वशिष्ट और हनुमान्‌जी वस्त्राभरणोंसे सुसज्जित बड़ी बेतकल्लुफ़ीसे मुँहमें बम्बई छाप बीड़ी दबाये दम लगा रहे थे। सीता हाथमें चायका प्याला थामे उर्मिलासे कुछ कानाफूसी कर रही थी और उर्मिला अपने पर्सकी सामग्रीसे अपना चेहरा उज्ज्वल करनेमें तन्मय थी। वह दृश्य देखते ही मैं 'रसाभास'का अर्थ समझ गया जिसे निरन्तर समझनेका प्रयत्न करते हुए भी मैं अपने जीजाजीकी भाँति, जो पचास साल पार करनेके बाद भी थर्मामीटर देखना नहीं समझ पाये हैं, अनजान बना हुआ था। मुझ अपात्रका पात्रोंसे परिचय अवश्य हो गया पर दिलमें एक टीस निरन्तर उठती रही जिसका निवारण लगभग एक महीने बाद उस दिन हुआ जिस दिन 'शुभ मंगल सावधान' के साथ विवाहमें सुमतिके साथ फेरे पड़े और अग्निकी साक्षी रखकर खुल्लमखुल्ला हम दोनोंका गठबन्धन हो गया।

विवाहका प्रथम वर्ष सुगमतासे गुज़र गया। दूसरा अटक-अटककर और तीसरा तो जैसे अगम-सा हो बैठा है। इन तीन वर्षोंके दौरान हम चार व्यक्ति हो गये हैं। बाक़ी दो व्यक्ति मेरे डायरेक्ट चार्जमें हैं। सुमतिको सोशल ऐक्टीविटीज़ इतनी बढ़ गयी है कि मैं सर्वथा 'पेसिव' बन गया हूँ। हर समय बच्चोंकी देखभाल किया करता हूँ। इतवारको हम

लोग होटलमें खाते हैं, बाक़ी दिन होटलसे डिब्बा आता है। क्योंकि भड़कमकर साहबका आदेश ऐसा ही है। जब खाने बैठता हूँ तो अनायास ही माँ याद आ जाती है और भाँति-भाँतिके खाद्य-पदार्थोंसे सुसज्जित थाली आँखोंके आगे थिरक जाती है।

उस दिन बैलोंकी नुमायश देखने न जाता और न सुमतिको प्राप्त करनेकी कुमति मुझमें बलवती होती पर किसीने ग़लत नहीं कहा है: "अब पछताये क्या होत है, जब चिड़िया चुग गयी खेत।"

साइकिलवाला

नेताओं तथा फ़िल्म स्टारोंको आप प्रायः बस या टैक्सी भाड़ा खर्च करते देखते हैं और यह भी सच है कि नेताओंको देखकर आप प्रायः निराश हो उठते हैं और फ़िल्म स्टारोंके दर्शनसे आपमें एक हीनताका भाव आ जाता है। इसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि या तो आप बच्चोंपर झुँझलाने लगते हैं या दफ़तरी दुनियाकी जिस छोटी-बड़ी कुरसीपर आप विराजमान होते हैं वहाँ अपना अहं और भी ज़ोरसे जताने लगते हैं। परन्तु आज इन वाचाल नेताओंसे और झिलमिलाते सितारोंसे एकदम दूर मैं आपको एक ऐसे व्यक्तिका दर्शन कराऊँगा जिसे देखकर आप स्वयंको केवल धन्य ही नहीं मानेंगे वरन् 'डिगनिटी ऑव लेबर'की एक नयी चेतनाका भी अपनेमें अनुभव करने लगेंगे। यहाँ यह भी बता दूँ कि ये व्यक्ति कोई सामाजिक जानवर नहीं हैं जिससे आप सर्वथा अनभिज्ञ हों। आप उसे नित्य ही अनेक बार देखते रहते हैं परन्तु बार-बार देखते रहनेके कारण आप उसे नहीं देख पाते, ठीक उसी प्रकार जिस तरह आप पोस्टमैनको तथा अपने दुर्गुणोंको देखकर भी नहीं देखा करते। इस व्यक्तिको न देख पानेका एक और भी कारण हो सकता है और वह यह कि वह प्रायः ऐसे स्थानपर अपना आसन जमाये रहता है जहाँ दो सड़कें एक-दूसरेको काटा करती हैं और आप उस काटसे बचनेके लिए बहुधा कोई 'शार्ट कट' निकालकर चौराहेसे बच निकलते हैं।

आपको मेरे कथनपर विश्वास न हो तो किसी भी चौराहेपर क्षण-भर-

के लिए रुक जाइए और ठण्डे दिमाग़से अपने चारों ओर देखिए और आप देखेंगे – किसी पेड़पर लटका साइकिलका एक पुराना घिसा हुआ टायर ! यदि आप क्षण-भरके लिए अन्तर्मुखी हो जायें तो आपको लगेगा मानो उस टायरमें और आपमें किसी भी चीज़का अन्तर नहीं है। क्योंकि उस टायरकी ही भाँति जीवन-पथपर निरन्तर घूमते रहनेके कारण घिस जानेके बावजूद आप टायर ही की भाँति वैसे ही शून्याकार बने हुए हैं जैसे आप यात्राके आरम्भमें थे। अकस्मात् इस सत्यके उद्घाटनके कारण यदि नवोढाकी तरह आपकी आँखें क्षण-भरके लिए झुक जायें तो आप देखेंगे– एक पम्प जो शून्याकार टायरके ठीक नीचे आपके अहंकी भाँति तना हुआ खड़ा है जिसका एकमात्र कार्य अन्य शून्याकार टायरोंमें फूँक भरना है। चौंकिए नहीं, पम्पको मैंने अहंकी उपमा इसलिए दी है कि पम्पमें अपना कुछ भी न होकर वह निरन्तर बाहरसे हवा खींच-खींचकर दूसरोंमें फूँक भरता रहता है। व्यवहारमें यही बात अहंके बारेमें भी कही जा सकती है क्योंकि दार्शनिक दृष्टिसे जो कुछ भी आप हैं वह स्वयं आपकी उपज नहीं है और इसलिए व्यक्तिमें अहंकी भावनाको हमेशा ही अवांछनीय माना जाता रहा है। ध्यान रखिए, मैं यहाँ केवल दर्शनकी ही बात कह रहा हूँ। व्यक्तिवादी द्रष्टा क्या कहते हैं उनकी चर्चा मैं नहीं कर रहा हूँ क्योंकि उनका वाद शून्यकी भाँति व्यक्तिसे उत्पन्न होकर व्यक्तिमें ही समा जाता है।

हाँ, तो यदि आप ज़रा और देखनेका प्रयास करें तो आप देखेंगे कि पम्पके आस-पास आपकी अपनी मान्यताओंकी भाँति कई उपकरण यानी औज़ार बिखरे पड़े हैं जो दो पहियोंसे चलनेवाली पैरगाड़ीको दुरुस्त करनेके लिए काममें लाये जाते हैं। इनके पीछे आपको एक ऐसे व्यक्तिके दर्शन होंगे जो अपनेमें नेता, अभिनेता, दार्शनिक, हीरो सब एक-साथ होगा। क्योंकि नेताका भाषण, अभिनेताकी अदा, दार्शनिकके विचार और हीरोका 'ड्राइव' या 'पुश' इन सब गुणोंका दर्शन आपको एक-साथ इस

व्यक्तिमें होगा। आपको यक़ीन न हो तो आप उससे ज़रा बात करके देखिए। उसे केवल राजनीतिके बारेमें ही कुछ कहना नहीं होगा वरन् वह आपको यह भी बतायेगा कि किस प्रकार एक समय अग्रगण्य नेताओंके घनिष्ठ सम्पर्कमें था और किस प्रकार तात्त्विक मतभेदके कारण वह उनसे उलझ पड़ा और फिर उन नेताओं-द्वारा अनेक बार बुलाये जानेपर भी उसने लौटकर उनकी ओर नहीं देखा। वह यह भी ज़रूर बतायेगा कि जब वह बम्बईमें था, तो प्रायः सभी अभिनेता उसे बहुत चाहते थे। कई उसके बचपनके यार थे और उनके साथ उसने कई 'शूटिंग्स'में भाग लिया था। यदि वह 'मूड'में हुआ तो साइकिलमें हवा भरते-भरते वह काम रोककर किसी प्रसिद्ध अभिनेत्रीके साथ अपनी प्रणय-कथाका भी रोमांचकारी वर्णन करेगा और वह आपको विश्वास दिला देगा कि बेवफ़ाईके कारण ही उसने उसे छोड़ दिया और यद्यपि अब भी उसके पास उस अभिनेत्रीके बराबर पत्र आया करते हैं परन्तु वह उनका जवाब तक नहीं देता। क्योंकि वह समझता है कि स्त्रीका सबसे बड़ा गुण 'वफ़ाई' है। इसी वर्णनके दौरान उसके दार्शनिक विचार प्रबल हो उठेंगे और वह ईमान, धर्म, नीति आदिके बारेमें एक अच्छा-ख़ासा लेक्चर झाड़कर उसका उपसंहार, आज नारी-संसारके अपनाये हुए सौन्दर्य-प्रसाधनोंपर कटु प्रहार करके करेगा। और आप गहन विचारोंमें डूबते-उतराते सोचने लगेंगे कि विधाताकी कैसी करनी है जो ऐसे मौलिक विचार और उच्च सिद्धान्तवाले व्यक्ति चौराहेपर पड़े सड़ा करते हैं। इसी बीच यदि आपके सौभाग्यसे सड़कपर कोई दुर्घटना हो जाये या कोई झगड़ा हो जाये तो आप हाथमें बिगड़ी साइकिल थामे विवशतासे देखेंगे कि वह व्यक्ति छलाँग मारकर घटना-स्थलपर पहुँच गया है और एक सरपंचके अन्दाज़से न्याय दे रहा है। आपको देखकर आश्चर्य होगा कि न तो वह व्यक्ति क़ानून जाननेवाला है और न कोई सफ़ेदपोश सम्मानित व्यक्ति है परन्तु ऐसे झगड़ोंमें आमतौरसे यह व्यक्ति एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करता है और उसीकी बात मान

भी ली जाती है। शायद इसीलिए कि वह स्वयंसिद्ध न्यायाधीशका काम करता है और समयानुकूल देनेके लिए गालियों और जमानेके लिए हाथोंकी उसके पास कमी नहीं होती। साधारण पढ़े-लिखे नागरिकके लिए दुर्लभ इस सुविधाके कारण ही इस व्यक्तिमें अपने पेशेके विषयमें एक ऐसी भावना प्रबल हुई दिखाई देती है जिसके कारण वह अपने पेशेको सर्वोत्कृष्ट समझकर आप-जैसे अन्य सभी सफ़ेदपोश लोगोंको हीनताकी दृष्टिसे देखा करता है।

मेरी खोजने मुझे बताया है कि ऐसे सभी व्यक्तियोंमें ठीक वही गुण होता है जो नेताओंमें हुआ करता है फिर चाहे वे नेता राजनीतिक नेता हों, साहित्यिक नेता हों, दलीय नेता हों या निर्दलीय हों और वह गुण है बचपनमें आवारा होकर घरसे भाग निकलना। आपको विश्वास न हो तो आप किसी भी बड़े आदमीके जीवन-चरित्रकी छानबीन करके देखिए। आप देखेंगे कि वह अवश्य ही छुटपनमें घरसे भाग निकला होगा क्योंकि उसमें कुछ ऐसी बात रही होगी जो उसकी तत्कालीन परिस्थितियोंसे मेल नहीं खाती थी। महानताके इस रहस्योद्घाटनके साथ ही आप यह भी समझ जायेंगे कि टायरकी भाँति घिस जानेके बाद भी आप क्यों दुनियाकी दृष्टिमें एक महान् व्यक्ति नहीं बन सके। और इस दृष्टिसे आपमें और उस व्यक्तिमें जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है मैं एक मजेदार साम्य देखता हूँ और वह यह कि आप दोनों ही समझते हैं कि आप महान् व्यक्ति हैं यद्यपि दुनिया आप दोनोंको कुछ और ही समझती है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि आप घरसे भागें ताकि आप महान् व्यक्ति बन जायें। उस दशामें वही कहावत चरितार्थ होगी कि 'चौबेजी गये थे छब्बे बनने और रह गये दुबे ही।' क्योंकि ऐसी दशामें पम्प थामे चौराहेपर बैठनेके बजाय आप निस्सन्देह लोगोंको काटना शुरू कर देंगे। परन्तु मैं नहीं चाहता कि आप लोगोंको दाँतोंसे काटें और बन्दर कहलायें, अतः मेरा आपसे अनुरोध है कि जो कुछ आपने मेरी आँखोंसे देखा है उसे एकदम अनदेखा कर दें और समझ लें कि मुझे पागल कुत्तेने काट खाया है।

■

दो नाक : एक कहानी

मानवीय सौन्दर्यमें नाक एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करती है परन्तु भारतीय शिल्पने जितना महत्त्व आँखोंको दिया है उतना नाकको नहीं दिया। इसके कारणपर जितना ही विचार करता हूँ समस्या उतनी ही जटिल होती जाती है। सौन्दर्यशास्त्री शायद कहेंगे कि चेहरेपर जहाँ सबसे पहले हमारी दृष्टि पड़ती है वह हैं आँखें। आँखोंका सम्बन्ध सीधा हृदयसे माना गया है और चूँकि मनुष्य भावनायुक्त जीव है, वह परस्पर भेंटमें आँखों-द्वारा ही दूसरे व्यक्तिके हृदय तक पहुँचकर उसके भावोंको टटोलनेका प्रयत्न करता है। हो सकता है कि सौन्दर्यशास्त्रियोंकी यह दलील रोमाण्टिक जगत्में ठीक भी हो जहाँ आँखोंमें आँखें डालकर देखनेका आम रिवाज है, परन्तु साधारण व्यवहारमें हम इस प्रकार एक-दूसरेकी ओर घूरकर नहीं देखते हैं और यदि दूसरा व्यक्ति भूलसे कोई मृगनयनी हो तो इच्छा होनेपर भी हम उसकी आँखोंकी ओर टक लगाकर नहीं देख सकते, क्योंकि उस दशामें वह केवल अशिष्टता ही न होगी वरन् मृगनयनीकी मुलायम जूती और हमारी कठोर चाँदका तत्काल ही सम्बन्ध भी स्थापित हो सकता है। जो देखनेवालेका अभीष्ट कदापि नहीं हो सकता।

अच्छा, जहाँतक हृदय टटोलने और भावोंको जाननेका प्रश्न है, तो वह भी हमें नहीं जँचता। सो, इसलिए कि प्रत्येक व्यक्तिके पास हृदय होता है, यह एक अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न है। यह मान भी लिया

जाये कि कुछ व्यक्तियोंके पास वह होता है तो व्यवहारमें वह अपना हृदय बन्दरकी तरह घरपर ही छोड़कर आते हैं। महिलाओंकी तो बात ही दूसरी है। क्योंकि प्रेमका पुजारी हर जला-कटा प्रियतम समस्त नारी जगत्को ही हृदयहीन मानता है। ऐसी दशामें हमें विवश होकर कहना पड़ता है कि सौन्दर्यवादियोंकी आँखोंके विषयमें यह धारणा एकांगी है तथा वस्तुस्थितिसे कोसों दूर है। आजका मनुष्य पूर्ण रूपसे बुद्धिवादी बन जानेके कारण हृदयसे बहुत दूर हट गया है। उसके सारे व्यापार बुद्धिसे नियन्त्रित होनेके कारण जिस चीजको टटोलनेकी हमें आवश्यकता होती है वह है उसका मस्तिष्क। मेरी समझमें मस्तिष्कका सुलभ द्योतक केवल नाक ही हो सकती है और इसलिए मैं मानने लगा हूँ कि आजके युगमें मनुष्यको समझनेके लिए यदि सबसे सुलभ उपाय है तो वह है नाक-का सर्वेक्षण। काले चश्मेके भीतर आँखें भले ही अगोचर हो जायें, पर नाक सर्वदा आपके सम्मुख खड़ी रहेगी।

उपरोक्त विवेचनमें शास्त्रीय दृष्टिसे कोई कमी रह गयी हो तो कृपया मुझे क्षमा करें क्योंकि न तो मैं कोई सौन्दर्यशास्त्री हूँ और न मैंने मनो-विज्ञानके ग्रन्थोंको चाटकर यहाँ उगलनेका ही प्रयत्न किया है। यह मेरे निजी विचार हैं और सच देखा जाये तो इस नाजुक प्रश्नपर विचार करनेकी भी मुझे आवश्यकता नहीं थी। आँखें बड़ी हों या नाक – मुझे क्या? पर जिस बातने मुझे इस दिशामें सोचनेके लिए मजबूर किया वह थी मेरी पुरानी बीमारी और वह यह कि जब भी कोई व्यक्ति मुझसे बातें करता है तो मेरा सारा ध्यान उसके चेहरेकी ओर लगा रहता है। परिणाम यह होता है कि वह अपनी बात कह जाता है और मैं बिना उसे सुने उस व्यक्तिका मुँह ताकता रहता हूँ। इसका मतलब यह नहीं कि मैं उसकी बात समझता ही नहीं। समझता अवश्य हूँ पर शब्दों-द्वारा नहीं, समझता हूँ उस व्यक्तिके हाव-भावों-द्वारा। इन हाव-भावोंको उस व्यक्तिके नाकका स्फुरण ही मुझ तक पहुँचाता है। आप मनोविज्ञानकी

परिभाषामें इसे कुछ भी कहें मेरा यह अटूट विश्वास है कि आजके युगमें मनुष्यको जाननेके लिए सबसे पहले उसका अहं जानना बहुत ज़रूरी है। और यह अहं व्यक्तिकी नाकमें ही प्रतिबिम्बित रहता है। ऐसा न होता तो 'नाक रह जाना', 'नाक कट जाना', 'बड़ी नाक होना', 'नाक रगड़ना' आदि व्यक्ति-परिचयात्मक मुहावरे हिन्दीमें कदापि प्रचलित न होते।

मनुष्यके चेहरेमें नाक यदि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण न होती तो लक्ष्मणजी शूर्पनखाकी नाक कदापि न काटते और न ही संस्कृत भाषामें स्वर्गको 'नाक' कहा जाता।

अनुभवसे मैं यह भी मानने लगा हूँ कि जिस व्यक्तिकी नाक जितनी बड़ी होती है अहंकी भावना भी उसमें उतनी ही अधिक होती है। चौपायोंमें प्रायः सभी जानवरोंकी नाक लम्बी होती है अतः कुछ अपवाद छोड़ दिये जायें तो इन सभी जानवरोंमें 'सेल्फ एसर्शन'की मात्रा अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक होती है।

अपने कथनकी सम्पुष्टिके लिए मैं यहाँ केवल उन दोनों नाकोंकी चर्चा करूँगा जिन्हें बराबर देखनेका और उनपर मनन करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। कहना न होगा कि यह दोनों नाकें मैं रोज छह घण्टे देखनेका अभ्यस्त हूँ क्योंकि यह दोनों व्यक्ति मेरे सहयोगी हैं। 'योगी' शब्दका प्रयोग यहाँ मैंने शब्दके चालू अर्थमें ही किया है क्योंकि यह दोनों व्यक्ति योगी न होकर केवल मेरे साथ काम किया करते हैं।

इन दोनों नाकोंमें-से असली नाक कुछ अधिक लम्बी, उद्गमके स्थानपर पतली और सिरेपर सहसा मोटी और कुछ नीचेकी ओर झुकी हुई होनेके कारण धनुषाकार-सी है। मुझे स्मरण है कि कुछ वर्ष पूर्व यह नाक छोटी थी, परन्तु इन दिनों काफ़ी बढ़ गयी है और आगे चलकर शायद और भी बढ़ जाये। आरम्भमें नाकका पतला होना इन महाशयके आधारभूत संकुचित स्वभावको सूचित करता है परन्तु आगे चलकर

अकस्मात् उसका लम्बा-चौड़ा और लचीला होना क्रमशः उनके अहं, सर्वव्यापकता और कभी-कभी अन्तर्मुखी होकर अपने हृदयमें हक़ीक़तको टटोलनेके स्वभावको घोषित करता है। ठीक यही सद्गुण उनके स्वभावमें भी एकदम विद्यमान हैं। यह तो हुई नाकके स्थायी रूपकी बात। अब उसके अस्थायी रूपपर भी ज़रा विचार कर लें। अस्थायी रूपसे मेरा मतलब नाककी उन 'हरकतों'से है जो विशिष्ट परिस्थितियोंमें हुआ करती हैं। 'हरकत' शब्दका प्रयोग मैंने यहाँ उर्दू अर्थमें किया है, क्योंकि हिन्दीमें ढूँढ़नेपर भी मुझे ऐसा कोई शब्द नहीं मिला जो नाकके संकुचन-प्रसारण, स्फुरण आदि व्यापारोंको एक ही शब्दमें सही-सही व्यक्त कर सके। हाँ, तो कुछ विशिष्ट परिस्थितियोंमें इन महाशयकी नाक अपना रूप बदलनेकी आदी है। जैसे श्रोताओंके सम्मुख जब यह नाक मंचपर जाती है तो ऐंठकर सीधी और पैनी हो जाती है जिसके फलस्वरूप मुँहसे निकलने-वाला हर वाक्य बाण बनकर नाककी सीधमें बरसकर सभी श्रोताओंको आहत करने लगता है। क्योंकि बोलते समय नाक चारों ओर घूमा करती है और इसलिए उन बाणोंसे श्रोताओंमें-से कोई भी नहीं बच पाता। महिलाओंके सम्मुख वही नाक कभी तो एकदम मुलायम पड़कर उसमें सुरसुराहट होने लगती है और कभी ऐंठकर वह एकदम टेढ़ी हो जाती है। कहना न होगा कि नाकका मुलायम पड़कर उसमें सुरसुराहट होना या ऐंठ जाना बहुत कुछ आगन्तुक महिलाकी अपनी नाकपर निर्भर रहता है। अफ़सरके सम्मुख यही नाक अपनी जगह जाकर लटक जाती है जिससे उसका चेहरा भी लटका-लटका-सा दिखाई देने लगता है। परन्तु अपने सहयोगियोंके साथ यह नाक अपने स्वाभाविक रूपमें तभीतक दिखाई देती है जबतक कोई आगन्तुक नहीं आ जाता। आगन्तुकके आते ही वह अकस्मात् फूल जाती है और सहयोगीको लगता है कि यदि वह तत्काल उठकर बाहर नहीं आ गया तो वह नाक हनुमान्की पूँछकी तरह बढ़कर उसे वेष्टित करके एकदम बाहर छोड़

आयेगी, अतः आप लघुसे लघुतम होकर वहाँसे उठ भागनेके लिए एकदम मजबूर-से हो जाते हैं।

दूसरी नाक कुछ अधिक सुडौल और पैनी है। उसपर वह धार है जो कब और कैसे काटेगी इसका आप स्वप्नमें भी अनुमान नहीं लगा सकते। कट जानेके बाद भी आपको शायद ही पता चले कि काटनेवाली नाक कौन-सी थी। यह महाशय जब चलते हैं तो अकसर इनकी नाक दोनों पैरोंके बीचका अन्तर नापती रहती है यानी उसका अग्र भाग ठीक पैरोंके बीचो-बीच ताकता रहता है। ऐसा लगता है मानो नाकसे वह यह देखनेके आदी हैं कि उनके क़दम तुले-तुले पड़ रहे हैं या नहीं और इसी प्रकार अपने दैनिक जीवनके कौन-कौन-से पैंतरे बदले जायें इस बातको वे अपनी नाकसे ही निर्धारित करते हैं। अफ़सरके सम्मुख उनकी नाक नवोढा-सी सिकुड़कर मासूम बन जाती है। मानो उसे दीन-दुनिया-की कुछ ख़बर ही न हो। इस नाकको कभी-कभी ब्लड-प्रेशर भी होता है और जिस प्रकार ब्लड-प्रेशरका कोई निश्चित कारण नहीं होता उसी प्रकार इस नाकके नथने भी अकारण ही फूल जाते हैं। ऐसी दशामें यह सज्जन जो अँगरेज़ीमें एक्सटेम्पोर बोलना शुरू करते हैं तो यह नहीं देखते कि उनकी भाषा या दलीलें सही हैं या ग़लत। यह दूसरी बात है कि नाकका दौरा ख़त्म होते ही जैसे ही नाक अपना असली स्वरूप धारण कर लेती है वैसे ही यह महाशय घिघियाकर क्षमायाचना करते हुए नज़र आते हैं। नाकके इस ब्लड-प्रेशरको अपवाद मान लिया जाये तो उनकी नाक इतनी सन्तुलित रहती है कि चारों ओर आपको उसी नाकके दर्शन होने लगते हैं। फिर आप रेडियोमें हों, विश्वविद्यालयमें हों या किसी प्रकाशक या लेखकके यहाँ हों। इनकी नाक प्वायण्टेड होनेके कारण प्वायण्ट्सकी उनके पास कभी भी कमी नहीं रहती। फिर चाहे विषय उनसे सम्बन्धित हो या न हो, प्वायण्ट उनके पास मिल ही जायेगा।

मेरा अनुमान है कि दो नाकोंका यह संक्षिप्त विवेचन मेरे कथनकी सम्पुष्टि ही नहीं करेगा वरन् इन नाकवालोंको जाने बिना भी आपको विश्वास दिला देगा कि जो कुछ मैंने कहा है वह निराधार नहीं है। यदि फिर भी आपको विश्वास न हो तो मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करूँगा कि जब भी आपको समय मिले आप अपनी नाकको आइनेमें देखनेकी आदत डालिए जिससे नाकके महत्त्वका उद्घाटन आपके सम्मुख हो सके।

लेखक और नारी

इनसे मिले ? यह हैं मेरी पत्नी, यानी मेरी वाइफ़ हैं। 'शी इज़ वण्डर-फुल' यानी ये अनोखी हैं। आप स्पेशलिस्ट हैं, विशेषज्ञ। आप नॉन-स्टाप बोलती हैं यानी बिना रुके एक साँसमें बोलती रहती हैं। इनके बोल भैरवीके बोल होते हैं क्योंकि आप साक्षात् भैरवी ही हैं। सुबह उठते ही जो आलाप शुरू हो जाते हैं तो तानों सहित रातको ही समाप्त होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि रात तनहाईमें कटती है। नींदमें भी आपका खरज छिड़ा रहता है यानी जब आप बोलती नहीं होतीं तब आप खर्राटे भरती रहती हैं। यक़ीन जानिए, इनके बोल मेरे सुरको बेसुरा कर छोड़ते हैं। क़लम हाथमें लेते ही इनका राग शुरू हो जाता है, क्योंकि इन्हें इसका रियाज़ है पर मैं कभी भी इनका साथ नहीं कर सका हूँ। जब मैं किसी सुन्दर-सी कल्पनाको बलपूर्वक घसीटने लगता हूँ और वह वधू-सी झिझकती-झिझकती आने लगती है तभी सासकी खाँसी-सी इनकी आवाज़ उसे लौटा देती है और मैं सुन्न-सा देखने लगता हूँ, देखता रहता हूँ।

आजकी ही बात लीजिए। पिछले एक माहसे सोच रहा था 'लेखक और नारी' पर कुछ लिखूँ। पर जब भी लिखने बैठता हूँ श्रीमतीजीके सब काम एकदम और एक साथ ज़रूरी बन जाते हैं और क़लम एक ओर धरकर मुझे निष्काम भावसे उन्हें करना पड़ता है। आज भी वही हुआ। तड़के उठा तो लिखनेकी तमन्ना लेकर। वे इत्मीनानसे खर्राटे भर रही

थीं। सोचा 'टोण्ड मिल्क' लाकर रख दूँगा और लिखने बैठ जाऊँगा पर दुर्भाग्य मेरा कि हर ऐसे मौक़ेपर मुझसे ज़रूर कोई-न-कोई ग़लती हो जाया करती है। आप ही बतलाइए मुझे क्या पड़ी थी कि ऐसे अनुकूल वातावरणमें इस इकतारेको छेड़ देता। पर तुलसीदासजीने ग़लत नहीं कहा है 'हुइहै सोइ जो राम रचि राखा।' मैं पैसे माँग बैठा। वे झल्लायी-सी उठीं तो पैसे तो नहीं मिले पर भैरवीकी दुगुन चालू हो गयी। बात यह थी कि उनके कलके आठ आने मेरी ही ओर निकलते थे। इन आठ आनोंको लेकर उन्होंने विगत जीवनका बड़ी ही निर्ममतासे मूल्यांकन कर डाला। ऐसे महाभारत या रामायणके समय मैं चुप साध जाया करता हूँ। (यहाँ रामायण शब्दका प्रयोग मैं पारायणके अर्थमें कर रहा हूँ। मेरा ऐसा करना प्रयोगवादमें फ़िट न बैठता हो तो प्रयोगवादी लेखक भाई मुझे 'इगनोर' कर दें) मैं ऐसा इसलिए करता हूँ कि श्रीमतीजीका शब्द-भण्डार अपार होता है, प्रहार अचूक और आक्षेप असीम। उनकी वाक्गति और शब्द-प्रयोगोंमें बाधक बननेका अर्थ अनर्थके बहुत निकट हुआ करता है और यह मैं ही नहीं सभी जानते हैं। सो आज भी मैं दब गया। केवल दब ही नहीं गया, जहाँसे वे उठी थीं, वहीं मुन्नेके साथ रजाईमें जम गया। वे शायद तीन घण्टे तक बोलती रहीं, चहकती रहीं, भनभनाती रहीं, फटफटाती रहीं, झल्लाती रहीं और मैं सोचता रहा कि लेखकोंकी बीवियाँ उनकी साहित्य-सर्जनामें प्रेरक होती हैं या बाधक। ये बीवियाँ क्यों लेखकोंको निकम्मा समझती हैं? और समझती हैं तो क्यों उन्हींकी रचनाओंसे रस-स्निग्ध होती हैं? श्रीमतीजीका कहना है कि लेखकका दृष्टिकोण अपनी पत्नीके प्रति एक और नायिकाके प्रति दूसरा होता है। यह केवल आक्षेप है या वास्तविकता? इसी बातपर विचार करते-करते न जाने कब श्रीमतीजीके बोल मुझे दूर-दूर जाते हुए-से प्रतीत होने लगे और थोड़ी ही देर में मैं महिलाओंकी एक अलग दुनियामें जा पहुँचा। वहाँ कई महिलाएँ मुझसे एक साथ मिलनेके लिए फड़फड़ा रही थीं। प्रेस

इण्टरव्यूके कोलाहलसे मैं परिचित था, पर यह 'नारी इण्टरव्यू' मेरे लिए एकदम नयी चीज़ थी। पूछनेपर पता चला कि इस जमघटमें वाल्मीकि-की सीता, शूद्रककी वसन्तसेना, भासकी वासवदत्ता, कालिदासकी शकुन्तला, तुलसीदासकी जानकी, जयदेवकी राधा, प्रसादकी श्रद्धा, गुप्तजीकी यशो-धरा, जैनेन्द्रकी सुनीता और अज्ञेयकी रेखा हैं और ये सब मुझसे इण्टरव्यू चाहती हैं।

इन सभी महिलाओंका अपना-अपना दृष्टिकोण है जो इनके निर्मा-ताओंकी कृतियोंमें व्यक्त नहीं हुआ। मैं घिघियाया कि मैं हिन्दीका एक छोटा-सा लेखक हूँ। हल्की-फुल्की चीजें लिखता हूँ जिन्हें आलोचक रच-नात्मक साहित्य नहीं मानते, अतः इन सिद्धहस्त लेखकोंकी कृतियोंपर मत देनेका मैं अधिकारी नहीं हूँ, आप मुझे क्षमा करें। पर जब उन्होंने मेरी एक न सुनी और मुझे लेखकोंका प्रतिनिधि समझकर मेरे साथ खींचातानी शुरू कर दी तो अपनी जान बचानेके लिए मैंने काँपते हुए कहा – "प्रस्तुत हूँ, पर कृपया दूरसे बात करें। मैं वनस्पति घीपर पला हुआ काग़ज़ी लेखक हूँ। और हाँ, आप सब पहले सीनियरटीके हिसाबसे क्यू बना लें ताकि एक-एकसे शान्तिपूर्वक बात की जा सके।" तभी जमघटसे एक साथ सुरीली और मोटी आवाज़ें उठीं : "क्या कहा?" और मुझे अपनी भूल समझमें आ गयी, मैंने कहा : "क्षमा करें देवियो, मेरा मतलब क्रम और रेखासे था यानी रेखा-क्रमसे, पहला पहले और बादका बादमें। इसको मेरे युगमें सीनियरटी अथवा क्यू कहते हैं। यह कल्पना विदेशी होनेके कारण मैं इसका अनुवाद हिन्दीमें नहीं कर सका, क्षमा करें, अब यों समझिए क्रममें सीतादेवी सबसे पहले आती हैं उनके बाद वसन्तसेना, वासवदत्ता आदि। इसी क्रमसे आप लोग बैठ जायें। हाँ, तो सबसे पहले मैं देवी सीताको प्रणाम करता हूँ। आपको क्या कहना है देवि?"

"वत्स, वाल्मीकि ऋषिने जो मेरा चरित्र-चित्रण किया है, वह भार-तीय नारीके आदर्शके अनुरूप ही है, पर इस आदर्शपालनके लिए जो मेरे

मनमें संघर्ष चलता रहा उसका उल्लेख न कर कविने चित्रका केवल एक ही पहलू उपस्थित किया है, जो न्यायोचित नहीं है।" "कविकी सीता देवी सीता होकर भी मानवीके रूपमें ही प्रस्तुत हुई है अतः उसमें मानव-सुलभ गुणोंके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मानवकी दुर्बलताओं-पर जय पाना दूसरी बात है। मुझे केवल इतना ही कहना है, कल्याण हो।"

"और मैं शूद्रककी वसन्तसेना हूँ यानी 'मृच्छकटिक' की वसन्तसेना। नाटककारने मुझे राजनर्तकीके रूपमें प्रस्तुत किया है। नारी-हृदयके पवित्र प्रेमकी मैं प्रतीक हूँ, पर मैं वेश्या-कुलकी कन्या हूँ। मैं पूछती हूँ नारी-हृदयके पवित्र प्रेमको दिखानेके लिए मुझे वेश्या कन्या और राजनर्तकी ही क्यों बनाया गया? क्या यह पुरुष नाटककारकी लेखनीकी कमी नहीं है? पवित्र प्रेमकी स्थापनाके लिए उसने परिस्थितिसे ही क्यों लाभ उठाया?" "इसलिए वासन्तीजी, कि परिस्थितिकी पार्श्वभूमिमें आपका चरित्र और भी चमक उठे।"

"देखिए लेखक महोदय, मुझे इस चमककी आवश्यकता नहीं थी। मेरा व्यक्तित्व उज्ज्वल था और प्रेम पवित्र। सच तो यह है कि उसे व्यक्त करनेके लिए जो माध्यम नाटककारने लिखा है उससे मेरे चरित्रमें ज़रा भी फ़र्क़ नहीं पड़ता। और मैं कहती हूँ, तुम पुरुष नारीके विषयमें हमेशा प्रेमकी ही बातें क्यों किया करते हो? क्या यह तुम लोगोंकी अतृप्त वासनाओंकी तुष्टि नहीं है?" इतना कहकर वसन्तसेनाने तुनककर सला-इयोंको ऊनके गोलेमें गुस्सेसे ठूँसा और चल दी। मैंने निःश्वास छोड़कर सामने देखा तो वासवदत्ता खड़ी थी। "मैं रानी वासवदत्ता हूँ" मेरी आँखोंसे आँखें मिलाते हुए उसने कहा। "पति-परायणा, पतिके सुखको ही मैंने हमेशा अपना सुख माना। पर राजाका दूसरा विवाह कर लेना क्या उचित था? क्या आप समझते हैं उससे मेरी आत्मा विद्रोह नहीं कर उठी होगी? पर भास तो पुरुष थे न। वे मेरी वास्तविक भाव-

नाओंको कैसे समझ सकते थे ? पति-परायणताकी दुहाई देकर अपने कर्त्तव्य-से मुक्त हो गये और समझ लिया कि नारी जातिपर उन्होंने बहुत बड़ा उपकार कर दिया है ।" "ठीक कहा, बहन तुमने" बीचमें ही एक दूसरी आवाज़ आयी और मैंने एक अत्यन्त लावण्यमयी छायाको अपने सम्मुख देखा । मुझे समझते देर न लगी कि यही कालिदासकी शकुन्तला है । "तुम्हीं वह कालिदास हो न ?" उसने कड़ककर कहा । "नहीं, देवि, ऐसा अन्धेर न करो । कालिदास संस्कृतके कवि थे, महान् थे । मैं तो हिन्दी-का नाचीज लेखक हूँ । उसके पैरकी धूल भी नहीं ।" मैं घिघियाया । "यह सब मैं नहीं जानती । कालिदास न सही पर पुरुष लेखक होनेके नाते तुम भी उसी थैलीके चट्टे-बट्टे हो । तुमने दुष्यन्तके हाथों विस्मृतिके नाम मेरा अपमान कराया और उसकी स्मृति लौटते ही मुझे उसके अर्पण भी कर दिया । मेरा बस चलता तो मैं दुष्यन्तकी ओर फूटी आँखसे न देखती । पर तुम पुरुष समझते हो, नारी केवल अर्पण ही जानती है । धिक्कार है तुम्हें और तुम्हारे साहित्यको ।" इतना कहकर वह छाया अस्पष्ट होने लगी और उसके स्थानपर एक और मूर्ति उभरने लगी । मैंने ग़ौरसे देखा तो साक्षात् तुलसीदासकी सीता । मैंने उठकर नमस्कार किया और वन्दना गाने ही वाला था कि उन्होंने कहा, "देखो लेखक, इस शिष्टाचारकी आवश्यकता नहीं । अभी-अभी तुम मेरा पूर्व रूप देख चुके हो । वाल्मीकिकी सीता और मैं वस्तुतः दोनों एक ही सीताकी प्रतिकृतियाँ हैं । ऐसी दशामें मुझे ग्रामीण क्यों दिखाया गया ? क्या मैं सर्वथा सामर्थ्य-हीन थी ? पर मेरा चरित्र-चित्रण करनेवाले थे रामके भक्त-प्रवर । मैं तो केवल रामकी अर्धांगिनी होनेके कारण ही पूज्य समझी गयी ।" मैं नतमस्तक होकर अपराधी-सा सुन रहा था तभी किसीके खाँसनेकी आवाज़ आयी और मैंने सुना—"मैं राधा हूँ । सीताका ही दूसरा रूप । फिर क्यों मुझे एक सामान्य नायिकाके रूपमें प्रस्तुत किया गया ? एक ओर तुम लोग मुझे पुरुषकी प्रकृति या ईश्वरकी माया मानकर पूजनीय मानते हो और

दूसरी ओर एक साधारण मानवीकी भाँति उत्तान शृंगारकी मूर्तिके रूपमें भी प्रस्तुत करते हो। क्या ऐसा करके जाने या अनजाने तुम लोगोंने अपनी अतृप्त वासनाओंको तृप्त नहीं किया।" मैं चुपचाप सुन रहा था और छायाएँ बदल रही थीं। अब प्रसादकी श्रद्धा मेरे सामने खड़ी कह रही थी—"मैंने मनुको सम्बल दिया, पत्नीका प्रेम दिया, माताका वात्सल्य दिया और पाया क्या ? ताप, विडम्बना, अशान्ति, प्रवंचना। मनुको अपनानेमें ही मेरे चरित्रका आदर्श दिखाया गया है। मैं नहीं समझती यह आदर्श यथार्थकी भूमिपर खड़ा है। नारीकी उदारताकी दुहाई देकर पुरुषकी दुर्बलताओंपर आवरण डालनेका ही क्या यह एक सुन्दर प्रकार नहीं है ?" मैंने श्रद्धासे आँखें झुका दीं। अबकी बार मेरे सामने गुप्तकी यशोधरा खड़ी थी। उसे देखते ही मेरे मुँहसे निकल पड़ा "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचलमें है दूध और आँखोंमें पानी।"

"ठीक इसी पंक्तिपर मुझे भी कहना है" उसने आँखोंका पानी पोंछते हुए कहा "नारीकी यह अवस्था गुप्तके युगकी विशेषता हो सकती है पर जिस युगमें मेरा जन्म हुआ था उस युगसे यह अवस्था कदापि मेल नहीं खाती। क्या यह औचित्य है ?" "ठीक तो है" जैनेन्द्रकी सुनीताने आगे आते हुए कहा "मुझे ही देख लीजिए। मेरे निर्माणमें लेखकने इस औचित्यका ज़रूर ख़याल रखा है पर पतिकी इच्छाके लिए जो कार्य उसने मुझसे करवाया वह नारीकी मर्यादाके विरुद्ध है। मैं स्वतन्त्र होती तो सबसे पहले ऐसी सलाह देनेवाले अपने पतिकी ही खबर लेती।" क्रोधसे उसका चेहरा तमतमाया और विलीन हो गया।

अबकी बार जो महिला आयी उसके बाल कटे हुए थे। ओठ लिपस्टिकसे रंगे थे, आँखोंमें बुद्धिकी चमक थी। ऐसा लग रहा था मानो अमरीकी नारी भारतीय वेश धरकर आयी हो। "हाउ डू यू ? मैं रेखा हूँ, 'नदीके द्वीप' की रेखा" कहकर उसने तपाकसे मुझसे हाथ मिलाया और चटसे पासवाली कुरसीपर बैठ गयी। "नाउ लुक" उसने

कहना आरम्भ किया, "मेरे साथ सबसे अधिक अन्याय हुआ है। संस्कारोंसे मैं अवश्य भारतीय हूँ पर विचारोंमें विदेशी। इसलिए परम्परा-के बन्धन मुझे नहीं सुहाते। सौन्दर्य और यौवन आरम्भसे ही नारीके लिए अभिशाप सिद्ध हुए हैं। मैं इनका उपयोग वरदानके रूपमें देखना चाहती हूँ। यही कारण है कि अपने प्रियतमसे सन्तान पाकर भी मैंने उससे विवाह नहीं किया। यहाँतक लेखकने मुझे ठीक समझा है पर मुझमें जो और है वह अंकित करनेसे लेखक कतरा गया है। मैं उन्मुक्त वातावरण चाहती हूँ। तितली हूँ, फूलोंका रस पीकर उड़ जाना चाहती हूँ। मेरे विचारोंमें यही नारी-जीवनकी सार्थकता है। समझते हो न?" उसने कहा और एक अर्थपूर्ण मुसकान उसके होठोंपर खेलने लगी। उसकी लीलामयी आँखोंमें आँखें डाले मैं देखता रहा और मुझे लगा जैसे इन आँखोंसे मैं परिचित हूँ। तनिक अधिक ध्यानसे देखा तो स्वयं मेरी श्रीमतीजी आँखें फाड़े हुए मुझे निगल जानेवाले पोज़में खड़ी थीं। मैं सकपका गया। "तो आप हैं?" मैं झेंप मिटानेके लिए हकलाया। "जी।" "अभी किससे आँखें मिलायी जा रही थीं?" उसने कड़ककर कहा। "यों ही देख रहा था। अच्छा सुनो, तुम्हें भी लेखकोंके बारेमें कुछ कहना है?"

"भाड़में गये तुम्हारे लेखक और तुम" और मुझे लगा मानो किसीने ज़ोरसे मेरा कन्धा पकड़कर मुझे झकझोर दिया हो। देखा तो मैं चारपाई-पर लेटा हुआ था। रज़ाई नीचे ज़मीनपर पड़ी थी और श्रीमती न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती हुई मेरा कन्धा पकड़कर मुझे झकझोर रही थीं। यह उपसंहार मेरे लिए नया नहीं था।

शर्माजी : एक अध्ययन

आपने आदमी देखे होंगे। घबराइए नहीं, मेरा कथन नामाक़ूल नहीं है, सभी आदमी आदमी कहलानेके अधिकारी हैं यह माननेपर भी सभी आदमी आदमी होते तो 'अहमक', 'उल्लू', 'गधा' आदिकी गिनती आदम-ज़ातमें क्यों होती ? जिस प्रकार सभी नारियाँ (पुरुषकी नाड़ियाँ ?) नारियाँ होनेपर भी उन्हें चाँदनी चौककी पटरीपर भाव-भंगीसे चाटके पत्ते चाटते हुए देखकर उनके कर्णकटु शब्द और बेढंगे व्यवहारसे नारीके बारेमें आपकी सुकोमल धारणाएँ एकदम पराजित होकर आपका जी ख़राब होने लगे और आप उन्हें साक्षात् त्रिजटाकी द्विजटा शिष्य-परम्परा समझ बैठें तो वह आपकी समझकी भूल नहीं, वरन् प्रौढ़ मस्तिष्क और सुरुचिकी द्योतक है। शायद ऐसी ही परिस्थितिमें डूब-उतरकर संसारके महान् कलाकार शॉने एक बार कहा था कि संसारमें दसमें-से नौ आदमी मूर्ख हैं। पर मैं इतनी सच्ची बात नहीं कह सकता, क्योंकि हो सकता है आप और मैं भी उन नौमें-से हों। चकित होनेकी बात नहीं, आँखें मल-कर देखिए और आँखें मलकर देखनेमें रातको श्रीमतीजी-द्वारा प्यारसे लगाया हुआ काजल पुछ जाये या घसीटामलके इकलौते मुन्नेकी भाँति 'फैल जाये' तो भी हर्ज नहीं, लेकिन देखते समय अपने अण्डेसे गोल सिर और अखरोट-जैसे संकुचित मस्तिष्कमें-से पड़ोसीके प्रति दुश्मनी, बीवीके प्रति खीझ, बच्चोंपर क्रोध, ससुरालवालोंसे नूतनतम संस्करण बनाम लल्लूलाल या फतेसिंह (जो कुछ भी ग्रहोंके अनुसार रामनामधारी

पण्डितजीने नाम रख दिया हो) के जन्मपर कुछ पानेका लालच, फटे जूतेकी मरम्मत, कपड़ोंकी धुलाई देनेकी चिन्ता और अमुक मित्रकी बीवीकी लुभावनी सूरत और अपनी फूहड़ स्त्रीकी धरना दिये बैठे बेबुलाये मेहमान-सी तसवीर, मस्तिष्कसे निकालकर शान्त दिमाग़ और साफ़ नज़रसे अपने चारों ओर दुनियाका मुलाहिज़ा फ़रमाइए, तब शायद आप भी शॉके कथनसे सहमत होंगे, क्योंकि संसारका जो चित्र आप खींचेंगे उसे देखते ही आपको कोई 'जू' याद आये बिना नहीं रह सकता, न आये तो समझ लीजिए कि अभी आपके दिमाग़से बीवीकी कल रात की हुई फ़रमाइश और अफ़सरकी सुबह दी हुई झाड़का ख़ुमार अभी नहीं उतरा है।

नाना प्रकारके पशुओंका वह संसार आपके समक्ष मानवीय संसारसे किसी भी भाँति कम नहीं होगा। उसमें आपकी साली और पत्नीका अन्तर भले ही हो। जिस प्रकार 'जू'के भिन्न-भिन्न प्रकारके जीव-जन्तुओं-को देखकर आप उस महान् कर्ताको याद करते हैं, उसी प्रकार संसारमें विचरण करनेवाले इन द्विपादियोंको देखकर भी आप एकदम उस गोपी-वल्लभ कृष्ण या रावणसे अपनी पत्नी छीननेवाले रामको याद कर बैठेंगे। सच जानिए मनुष्य-मात्रकी समानतामें पायी जानेवाली असमानता देखकर आप यक़ीनन सोचेंगे माने आप स्वयं भी किसी 'जू'के जन्तु हों, किसीकी हब्शी-जैसी सूरत, किसीकी धोबीके गट्ठर-जैसी तोंद, किसीकी चालीसगज़ी सलवार तो किसीकी धोती निरन्तर ऊपर उठायी जानेके कारण कोई अपरिचित आया जान दरवाज़ेकी ओटसे झाँकती हुई लालाकी ललाइनकी भाँति, झाँकती हुई रान, तंगीको कोसती-सी किसी जैण्टलमैनकी ओछी पतलून, तो कसमस-कसमस करती हुई साटनकी मजबूतीको परखती स्नो-पाउडर और लिपस्टिकसे पुती किसी छबीलीकी मुँहज़ोर जवानी, तो किसीकी हिमालयकी तराईके जंगलों-सी बेरोक-टोक बढ़ी हुई मूँछें (जिनके नीचे, मुँहका अस्तित्व जो प्रायः संसारकी माँ-बहनोंसे रिश्ता

जोड़ता-जुड़वाता हो), किसीकी बिना प्रयत्नके उगी हुई दाढ़ीपर पालतू बटेरकी भाँति हाथ फेरना, तो किसीको, सिरके बाल एकदम हवा हो जानेके कारण चिन्तित देखकर यक़ीनन आप 'अली बाबा चालीस चोर' वाली कहानीकी कल्पनामें खो जायेंगे, ऐसी दशामें आपकी अन्तश्चेतना अधिक सजग हुई तो अतीतमें देखी हुई कुछ शक्लें आपको याद आ जायेंगी जिनमें किसी नाज़नीनकी, चुनावके लिए खड़े किसी उम्मीदवारके निरन्तर तक़ाज़े-सी याद या कभी बीवीसे भूले-भटके प्यार किये जानेपर रोमांचित हो जानेकी अवस्था भी हो सकती है और हो सकता है कि आपके मस्तिष्कमें जो चित्रपट चले उसमें कुछ 'टाइप' अपना विज्ञापन करते-से प्रतीत हों।

ऐसे टाइपपर ग़ौर करते समय यक़ीनन कोई छड़ीधारी, दुबला-मोटा, ठिगना-लम्बा, गोरा-साँवला, मोटी फ्रेमवाला काला चश्मा लगाये, धोती हाथमें उठाये, जाँघ चमकाता हीरो-सा व्यक्तित्व 'टाइपों' की भीड़को एक ओर ठेलता सामने आ जायेगा, जिसे देखकर आपकी तुलना-शक्ति घरमें बच्चा पैदा होनेपर नाचनेके लिए आयी हुई 'आदमी न औरत' वाली क़ौमसे एकदम तारतम्य जोड़ बैठेगी और इस तुलनाके साथ यदि उस व्यक्तिकी छड़ी ज़बरदस्ती ढोलका स्थान लेती-सी प्रतीत होने लगे तो आप उस छड़ीके साथ रुखाई न कीजिए; क्योंकि जिस प्रकार नृत्य-मण्डलीके लिए ढोल ज़रूरी है, बूढ़े परदादाके अस्तित्वके लिए परदादीका ज़िन्दा रहना आवश्यक है और घरमें पत्नी होते हुए भी बाहर एक प्रेमिकाका होना अनिवार्य है, उसी प्रकार उसके व्यक्तित्वकी पूर्णताके लिए उसकी छड़ी ज़रूरी हो सकती है, क्योंकि शायद उसका आधार, उसकी पहुँच और मैदानमें अधिक समय तक खड़ा रहना पड़े तो उसकी पूँछ यह एकमात्र छड़ी ही है। जिस प्रकार सलवार पहननेवालीका आधार चुन्नी है (जो नाक पोंछनेसे लेकर साग-तरकारी बाँधने तकका काम देती है)। जिस प्रकार बाबूका आधार क़लम है, लालाका डण्डी और एक हिन्दू नारीका

आधार और अधिकार पति और भाग्यको कोसना है, उसी प्रकार उसका आगा-पीछा उसकी सीधी वक्र छड़ी हो सकती है। यदि आप जानना चाहें कि उन छड़े महाशयका (पंजाबी भाषामें 'छड़ा' कुँवारेको कहते हैं) गठबन्धन छड़ीसे कब और क्यों हुआ तो उन्हींसे पूछ देखिए। वे रुक-रुककर हँसेंगे और आपको यक़ीन हो जायेगा कि दिल्ली ट्रान्सपोर्ट सर्विसकी किसी बसका इंजन 'आन' कर दिया गया है या कोई कबूतरी फड़फड़ाती उड़नेका प्रयत्न कर रही है।

ऐसे ही एक 'टाइप'से परिचित होनेका सौभाग्य मुझे भी प्राप्त है। उसका नाम कुछ भी हो, पर सुविधाके लिए मैं उसे शर्माजी कहूँगा, क्योंकि इस नाममें पुरातनता, स्त्रीलिंग-पुल्लिंगका आभास और शर्मका आह्वान (शर्म आ) और 'जी-जी' या 'हाँजी-हाँजी'का जी, सब-कुछ एक साथ है। मेरी इस रुचि-सुविधाके लिए 'शर्मा' नामवाले सभी सज्जन उदार हृदयसे मुझे क्षमा करेंगे।

शर्माजीसे अपना परिचय होनेकी बात कहूँ तो जिस प्रकार दीवालों-पर लगे चुनावके लिए खड़े किसी उम्मीदवारके पोस्टर या किसी हिन्दी मासिक पारिवारिक पत्रिकामें निरन्तर छपनेवाले 'बाँझ भी पुत्रवती हो सकती है' विज्ञापन बार-बार दिखाई पड़नेके कारण न चाहनेपर भी आप उनसे परिचित हो जाते हैं उसी प्रकार छड़ी-विहीन शर्माजीसे मेरा परिचय हुआ। छड़ी तो उनके व्यक्तित्वमें पीछेसे आयी। काफ़ी खोजके बाद पता चला कि जिस समय दूसरी बीवी-सी टेढ़ी छड़ी शर्मा-जी लाये उस समय वे धर्माजी न थे यानी किसी धार्मिक संस्थामें उनकी टाँग नहीं फँसी थी। इसीलिए जब सर्वप्रथम अपने नामके पासपोर्टसे शर्मा-जी धार्मिक संस्थामें घुसे तब उन्हें छड़े न होनेपर भी एकदम छड़ीकी आवश्यकता महसूस हुई, क्योंकि उन्हें उसके लिंग और गुण दोनोंकी ज़रू-रत थी — रसकी निष्पत्ति ही होती है।

शर्माजी तथाकथित अध्ययनशील व्यक्ति होनेके कारण उन्होंने आज-

कलकी 'लाजियों' पर काफ़ी सिर खुजाया था और अन्तमें अपनी साइ-किलसे मिलती-जुलती साइकालॉजीके आधारपर वे इस बातके क़ायल हो गये थे कि व्यक्ति भले ही एक हो, उसके व्यक्तित्व असंख्य होते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे गिरगिटीय-सम्प्रदायी थे। इस फ़ार्मूलेको किस प्रकार वे अपने जीवनपर घटित करते आये हैं इसकी चर्चा सिलसिलेवार आगे की गयी है।

स्वतन्त्रतासे पूर्व शर्माजीका साहबी व्यक्तित्व

स्वतन्त्रता मिलनेके पूर्व शर्माजी एड़ीसे सिर तक (चोटीके अभावमें चोटी तक कहना असंगत होगा) दिन-रात पूर्णरूपेण विलायती थे। हिन्दीको वे देहाती भाषा समझते थे, क्योंकि जिस 'इसकूल' (स्कूल ऑफ़् थॉट) के वे समर्थक थे उसमें हिन्दवीपनके लिए गुंजाइश न थी, अतः अँगरेज़ी बाना पहने शर्माजीने गोरे साहबको ख़ुश करनेके लिए अपने-को 'शरमन्' कहा और कहलवाना शुरू कर दिया था। तब उन्हें 'इसट्रा-इक' भी न हुआ था कि वे इलाहाबादके निकट एक देहातके तिलकधारी पण्डितजीके कुलदीपक हैं। उन्हें स्वतन्त्रता-संग्रामका भी कटु आलोचक होना ज़रूरी था, क्योंकि समद्रष्टा होनेके कारण 'स्व' और 'पर'में वे कोई भेद न कर पाते थे। 'संग्राम'में भी ग्राम विचारणीय आन्दोलन हो सकता था, पर 'ग्राम्या' वे देख ही चुके थे, इसीलिए सन् '४२ के आन्दोलनके समय जब राज-मार्गोंपर पिकेटिंग शुरू हुआ, गोली चलने लगी और 'दफ़्तर न जाओ' का नारा लगाते हुए छोटे-छोटे बालक मार्ग रोके सड़कों-पर लेट गये तो 'शरमन्' साहब पिछले दरवाज़ेसे लुकते-छिपते साहबको सलाम करने सबसे पहले पहुँच गये।

धार्मिक-संस्थामें शर्माजीका धार्मिक व्यक्तित्व

आज़ादी मिलते ही हवाई अड्डेपर बिदाईके समय साहबसे (जीवनमें प्रथम बार) हस्तान्दोलन करके शर्माजी लौटे तो दुम उठाये स्वतन्त्रताका

जयघोष करते हुए। दूसरे ही दिन कोट-पतलून, हैट आदि सब काफ़ूर हो गये, पर 'सरमन्'की यादगार लोगोंके मस्तिष्कमें अभी ताजा होनेके कारण शर्माजीके सामने कठिनाई उपस्थित हुई। इसलिए उन्होंने धर्मका आश्रय लेना उचित समझा, रातों-रात वे परदेशीसे देशी बन गये। 'रामचरित-मानस'में भारतीय संस्कृति देखने लगे, मीराके पदोंको माधुरीके क़ायल हुए और सूरके काव्यकी गेयताका उपयोग उन्होंने दिल खोलकर किया और कराया। आज भी किसी कीर्तनमें चले जाइए, तिलकधारी शर्माजीकी श्रीमूर्तिके दर्शन वहाँ आपको अवश्य होंगे। शर्माजी जब किसी धार्मिक विषयपर बोलते हैं तो उनके भाषणका आरम्भ 'जब मैं काशीमें था....'से होता है। उनका अटूट विश्वास है कि भारतवर्षमें धर्मका प्रचार काशी-इलाहाबादसे हुआ है।

साहित्यिक संस्थामें शर्माजीका साहित्यिक व्यक्तित्व

दूरद्रष्टा शर्माजी जानते थे कि 'कैरियर' की सफलताके लिए अवसर-वाद बहुत जरूरी है, इसलिए जब हिन्दी राष्ट्रभाषा हुई तो सुअवसर समझकर शर्माजी हिन्दीकी दुहाई देते राम-नामका दुपट्टा फेंक पैजामा-कुरता और जवाहर वास्कटका साहित्यिक चोंगा पहनकर हिन्दी-मैदानमें उतर आये। क्योंकि यह सच है कि उन्होंने हिन्दीमें कुछ न लिखा था परन्तु 'तोता मैना', 'सुखसागर', 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'बैताल पचीसी' उन्होंने कई बार पढ़ी थी और 'मानस' की चौपाइयाँ कीर्तनमें सुन-सुनकर याद हो ही गयी थीं। येन-केन प्रकारेण कुछ हिन्दी लेखकोंके नाम भी वे जान गये थे और रहनेवाले थे इलाहाबादके, जहाँका बच्चा भी छन्दमें ही रोता-हँसता है, फिर भला किसकी हिम्मत जो उनकी साहित्यिकता और हिन्दीपनमें मीन-मेख निकाले। साहित्यिक मंचसे बोलते समय वे अस्पष्ट (स्पष्ट) रूपसे कहा करते हैं, 'जब मैं इलाहाबादमें था तो मुझे शुकलजी (शुक्लजी) से मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। (वे शुक्लजीको

इलाहाबादी समझकर गौरवान्वित हुआ करते हैं) तब मैंने 'अस्पष्ट' रूपसे उनसे कह दिया था कि हिन्दीमें नपुंसक लिंगका न होना व्यवहारकी दृष्टिसे एक बहुत भारी कमज़ोरी है। (यह बात उन्होंने किसी अहिन्दी भाषीसे सुन रखी थी) बाबू श्यामसुन्दर दाससे रेलगाड़ीमें मुलाक़ातके दौरानमें मैंने कहा था कि आधुनिक साहित्य बहुत अस्पष्ट है, अतः लेखकों-को चाहिए कि बातको खोलकर लिखा करें....' आधुनिक वादोंपर विचार करते हुए वे जीवनमें प्रयोगवादी होते हुए भी प्रयोगवादको लेखकोंकी बकवाद और छायावादको (वादसे छायाका संयोग होनेके कारण) श्रेय मानते हैं। प्रगतिवादको तो वे निरी 'मजूरी' बकबक समझते हैं।

रेडियोमें शर्माजीका कलात्मक व्यक्तित्व

बड़े-बड़े 'साहित्यकों' (साहित्यिकों) से परोक्ष-अपरोक्ष नाता जोड़-कर भी जब शर्माजीकी साहित्यिक क्षेत्रमें दाल न गली तो उन्होंने रेडियोकी राह पकड़ी। औरोंकी सूझ-बूझ और निजी पूछ-ताछसे उन्हें पता चला कि रेडियोमें देहाती 'प्लोग्राम' चल पड़े हैं। फिर क्या था ? शर्माजी देहाती तो थे ही, तत्काल खड़ी बोलीको तिलांजलि देकर 'पुरवैया' पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार जताने लगे; लेकिन फिर भी बिना ज़रियेके जब कोई ज़रिया न बचा और एक रेडियो आर्टिस्टके नाते उनकी सुमधुर वाणीका प्रसारण न हो पाया तो उन्होंने राष्ट्रभाषाकी सेवाके नामपर एक अनोखी स्कीम निकाली; जिसकी कुछ धाराएँ हैं :

१. उत्तर भारतीय 'ग्राम्य भाषाओं'की गणना खड़ी बोलीके अन्तर्गत हो।

२. देवनागरीमें लिखी जानेवाली सारी भाषाएँ हिन्दी ही मानी जायें, तथा वे अपनी गतिविधि-सम्बन्धी निर्देश हिन्दीसे लिया करें।

३. संस्कृत और हिन्दीकी एक लिपि होनेके कारण 'संस्कृत' हिन्दीका ही आदि रूप मान लिया जाये।

४. प्रत्येक अहिन्दी भाषीको एक उत्तर भारतीय देहाती भाषा पढ़ना अनिवार्य किया जाये।

५. भारतके समस्त पुस्तकालयोंसे अँगरेज़ीकी पुस्तकें एकदम हटा दी जायें।

६. हिन्दीमें अहिन्दी भाषियोंका साहित्यिक प्रवेश तत्काल रोक दिया जाये, इत्यादि इत्यादि।

हिन्दीके प्रति शर्माजीमें इतना अखण्ड प्रेम यों अकस्मात् पैदा होनेके कारण उनके विचारों-सा ही गूढ़ बना हुआ था। अब जाकर कहीं पता लगा है कि वे कोई हिन्दी 'जाब'के लिए प्रयत्नशील हैं। उसे पाते ही हिन्दीकी उनकी ठेकेदारीका जो हाल होगा उसकी कल्पना आप ही करें।

कुत्तेकी दुम

आप भी कहेंगे विषय भी चुना तो 'कुत्तेकी दुम'। जैसे और कोई विषय ही न था। लिखना ही था तो किसी रंगीन विषयपर लिखते। कोई चटपटा या गुदगुदानेवाला विषय नहीं था तो न लिखते। यदि आप ऐसा कहें तो ज्यादती नहीं होगी क्योंकि मुझे डॉक्टरने नहीं बताया है कि मैं लिखूँ और आप हैं मुतवातिर लिखनेके आदी क्योंकि लिखना आजकलका एक फ़ैशन है और फिर लिखनेके लिए अब पढ़नेकी भी जरूरत नहीं रही। मैट्रिक पास करते-न-करते लिखने लगे, या संवाददाता बन बैठे। चार पूँछवाले लेखकोंकी पूँछ सहलायी कि आप भी पूँछवाले बन गये। पर मेरी बात थोड़ी भिन्न है। एक तो इसलिए कि मैं शुरूसे ही पूँछवालोंकी दुनियासे एकदम अलग रहा हूँ और दूसरे यह कि मैं लिखनेके अपने अधिकारके प्रति उतना जागरूक नहीं रहा हूँ जितने जागरूक आप और मेरी श्रीमतीजी हैं। विश्वास न हो तो मेरे घरकी दीवारोंको देख लीजिए। कहीं धोबीके कपड़े लिखे हुए हैं और कहीं सामानकी तालिका अंकित है; कहीं दूधवालेका हिसाब है तो कहीं रसोईका जमा-खर्च। और फिर मैं शुरूसे समझता आ रहा हूँ कि लिखना एक कला है और मैं कलाकार नहीं हूँ। लटकेदार बातें मुझे नहीं आतीं, मुट्ठियाँ भींचकर आल्हा-ऊदलके जोशसे लिखना नहीं आता, लिखते समय प्रकट शब्दोंमें एक और व्यंग्यसे दूसरी बात करना नहीं जानता, इसी प्रकार लिखते हुए भी कुछ मतलबका न लिखनेका भी मैं अभ्यस्त नहीं हूँ। यही कारण है कि मैं

लिखनेसे हमेशा बचता रहा हूँ। बीस वर्ष पूर्व विवाहसे पहले मैं अवश्य लिखनेके प्रयोग किया करता था पर फिर भी प्रयोगवादी न बन सका क्योंकि दोस्त तो दूर मेरे प्रयोगोंको लेकर वाद-विवाद करनेके लिए भाड़े-पर भी कभी कोई नहीं मिला। विवाह हुआ, श्रीमतीजीसे मुलाक़ात हुई और मेरे व्यक्तित्वको नया मोड़ मिला यानी लिखनेकी ड्यूटीका चार्ज उन्होंने तत्काल सँभाल लिया। सुबह विवाह हुआ और दोपहरसे उन्होंने ख़र्चा लिखना शुरू कर दिया।

श्रीमतीजीकी अनुपस्थितिमें आज लिखने बैठा हूँ तो 'कुत्तेकी दुम'को छोड़कर दूसरा कोई भी विषय ही नहीं दिखाई देता। आप इसे मामूली विषय न समझें। कुत्ता ज़रूर छोटा-सा जानवर है पर उसकी दुममें मनुष्य-स्वभावका बहुत बड़ा सत्य छिपा है। यह सच है कि इस सत्यका अनुभव करके जिस-किसीने उसका उद्‌घाटन 'कुत्तेकी दुम' मुहावरेमें किया होगा, वह अमरीका नहीं हो आया था, 'भारतीय साहित्यमें कुत्ता और उसकी दुम' विषयपर उसने डॉक्टरेट भी नहीं पायी थी और न वह कोई कुत्तोंका विशेषज्ञ ही था। वह केवल कुत्तेकी दुमका प्रेमी था। और इस अनन्य प्रेमके कारण ही कुत्तेकी दुममें अपने दर्शन करके शायद उसने इस मुहावरे-को चालू किया होगा। आज इस मुहावरेके सत्यकी गहराईमें उतरता हूँ तो आनन्दसे गद्‌गद हो उठता हूँ। क्योंकि एक ओर 'कुत्तेकी दुम' साहित्यिक मुहावरा है, दूसरी ओर मनुष्य और कुत्ता दोनोंके स्वभावका द्योतक है और कुत्ता सर्वगामी और लोकके अधिक निकट होनेके कारण उसमें लोककथा और लोक-नृत्यका पुट भी सहज ही मिल जाता है। जो आजके युगकी एक विकट आवश्यकता है। 'कुत्तेकी दुम' में निहित मुख्यतया दो गुण हैं। एक सर्वथा टेढ़ा रहना और दूसरा कुत्तेका अपनी ही दुम पकड़ने-के लिए गोल-गोल घूमना। दुमके इन दोनों गुणोंसे संसार अवगत है। पर यह ही गुण कुत्तेकी दुमकी सीमा नहीं है। अपने बीस वर्षीय अनुसन्धान और शोध कार्यके बलपर मैं कह सकता हूँ कि कुत्तेकी दुमका तीसरा गुण

है दाताको देखकर हिलना, चौथा गुण है अपनेसे बलिष्ठ दुमको देखते ही दब जाना और पाँचवा गुण है अपनेसे कमज़ोर दुमका दर्शन होते ही अकड़-कर और भी वक्र बन जाना। कुत्तेकी दुमकी इन विशेषताओंके सत्यकी जाँच करनेके लिए मुझे दूर नहीं जाना पड़ा। क्योंकि घरमें नन्हींकी अम्मा-में पहला और मेरे वरसेटाइल जीनियस मित्रमें शेष सभी गुण एक-सौ नये पैसे विद्यमान हैं जिनका रसास्वादन मैं निरन्तर करनेके लिए मजबूर हूँ। मसलन हमारे घरमें एक चूर्णका डिब्बा है। चूर्णका फ़ार्मूला श्रीमती-जीकी अपनी खोज है और वे ही उसे हर महीने कूट-पीसकर तैयार करती हैं क्योंकि मुझे अकसर बदहज़मीकी शिकायत रहती है और पेट ख़राब रहनेके कारण लगभग हर दूसरे दिन मुझे उनके सामने चूर्णके लिए हाथ फैलाना पड़ता है। जिस डिब्बेमें चूर्ण रखा जाता है वह मूलमें एक विलायती डिब्बा था पर गत बीस वर्षोंसे निरन्तर चूर्ण रखे जानेके कारण 'चूर्णका डिब्बा' बन गया है। इन बीस वर्षोंमें उसका रंग ही नहीं बदला, काया भी पलट गयी है। जंगसे परिपूर्ण तो है ही, साथ ही दादी-के पोपले मुँहकी तरह कई जगह पिचक भी गया है। पर मेरे निरन्तर अनुरोध करनेपर भी चूर्णका डिब्बा नहीं बदला जाता। घरमें डिब्बोंकी कमी हो सो भी बात नहीं। कई विदेशी दूधके डिब्बे खाली पड़े हैं क्योंकि मैं और मेरे चार बच्चे शुरूसे ही डिब्बोंका दूध पीनेके आदी रहे हैं।

सोचता हूँ कि इन बीस सालोंमें दुनिया क्यासे क्या हो गयी। जिन्होंने अपना प्रान्त भी नहीं देखा था वे विदेश घूमकर देशीसे विदेशी हो गये, जो फ़िल्मी गानोंकी तुकबन्दी किया करते थे आज माने हुए आलोचक बन गये, जो परचूनकी दूकानकी गद्दीपर बैठे डण्डी मारते समय हक-लाया करते थे वे वैयक्तिक सहायकोंकी योग्यताके सहारे कलाकार बन बैठे। हम दोनों छह हो गये। मैं वाचालसे एकदम मौन बन गया। कई मकान बदले, कई कबाड़ी आये और गये, पर चूर्णका डिब्बा वहीका वही है। न बदलता है न खोता है। आखिर चूर्णके इस पुराने डिब्बेके

प्रति इतनी आसक्ति क्यों ? कभी-कभी सोचा करता था कि शायद श्रीमती-जीके मनमें डिब्बेके प्रति कोई विशेष भावना जमी हुई हो, पर सो भी बात नहीं है क्योंकि भावनाओंसे वह उतनी ही दूर हैं जितनी दूर साहित्यको लेखककी मौलिक देन कूतनेसे आजके ९९ फ़ीसदी लब्धप्रतिष्ठ आलोचक, या वस्तुस्थितिके सत्यको लेकर नीर-क्षीर न्याय करनेसे विशेष संवाददाता। अपने एक स्नेही मित्रसे पूछते ही, जो अपनेको नारी-मनोविश्लेषणमें पटु कहा करते हैं तथा न माँगनेपर भी मित्रोंको 'फ्री एडवाइज़' दिया करते हैं, वे श्रीमतीजीके चेतन मनमें घुसकर अचेतन मनकी जो बखिया उधेड़ने लगे तो भावी आशंकासे मैं ऐसा घबराया कि घरपर आकर ही साँस ली। वे लम्बी-चौड़ी परिभाषाओंमें और क्लिष्ट शब्दोंमें बहुत-कुछ कहते रहे पर अपने रामको तो एक ही तर्क जँचा और वह था कुत्तेकी दुमका न्याय।

इसी प्रकार दुमके शेष चारों गुणोंके दर्शन मुझे मेरे लेखक-मित्रमें हुए। मेरे मित्र वह हैं जो अपना नमूना नहीं रखते। नामको छोड़िए, नामसे ठीक परिचय नहीं होता क्योंकि नाम और गुणके परस्पर सम्बन्धकी अनिवार्यतापर शुरूसे ही कभी विचार नहीं हुआ। होता तो 'आँखके अन्धे, नाम नयनसुख' वाली कहावतसे हिन्दी साहित्यकी वृद्धि न होती और सभी लोगोंका दोबारा नाम-संस्करण करना चालू 'फाइव ईयर प्लान' का अनिवार्य अंग बन जाता। आपके लिए इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि मेरे मित्र लिखते हैं और कसकर लिखते हैं। कोई भी पत्रिका आपसे अछूती नहीं बची। यानी वे लेखक हैं, कवि हैं और रिपोर्टर भी हैं। कुछ अपनी क़लमसे लिखते हैं, कुछ क़ैंचीके सहारे, कुछ भाईचारेसे और कुछ पिक-पॉकिटके ढंगसे। तात्पर्य यह कि वे शहदकी मक्खीकी लगनसे मैटर संचय किया करते हैं। उनके नाम दूसरोंकी दस किताबें छप चुकी हैं, जिनमें रुक्मिणी देवी छात्राका 'पाक-शास्त्र' है, अच्छे मियाँ 'प्रशंसक'का, उर्दू शाइरीकी हिन्दीको देन है, लक्ष्मीधर शास्त्री 'मेघदूत'के

पितामहकी लिखी हुई 'संस्कृत साहित्यका काव्य सौन्दर्य' नामक पोथी है, कामरेड सुखोपाध्यायका 'मार्क्स दर्शन' है, 'राष्ट्रभाषा सेवी गुडनेर', केरलके पिल्ले महाशयका 'हिन्दी शिक्षक' है और 'हिन्दी आलोचनाके ज्योतिर्दीप' है। (इस पुस्तकके स्रोतका अभीतक पता नहीं चला है।) वे ऊपरसे देशी और भीतरसे एकदम विदेशी हैं क्योंकि खादी भी पहनते हैं और विलायती वस्तुओंको भी कसकर इस्तेमाल करते हैं। वे छायावादी इसलिए हैं कि छायावादके कटु आलोचक होते हुए भी उनके तथाकथित लेखनमें केवल छाया-ही-छायाके दर्शन होते हैं। प्रयोगवादी तो वे स्व-भावसे ही हैं क्योंकि साहित्य और भाव संचयनके लिए वे नित्य नये प्रयोग करते चले आ रहे हैं और वाद और प्रतिवाद ही उनकी शोहरतका राज है, उन्हें रहस्यवादी भी कहा जा सकता है क्योंकि उनके साहित्यिक पैंतरोंका रहस्य किसीको भी विदित नहीं। आपके व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप हिन्दीमें किसी भी लेखकको अपना सानी नहीं मानते बल्कि अपने ही चारों ओर घूमते रहते हैं। संक्षेपमें आप वह दुम हैं जो सीधी वक्र होती है, दबती है, ऐंठती है और आप उसीके पीछे घूमते रहते हैं – चक्कर मारा करते हैं। यह हुई कुत्तेकी दुमके गुणोंकी बात जब दुम अस्तित्वमें रहती है। पर कहीं-कहीं मालिकके हठधर्मी स्वभावके कारण दुम काट भी दी जाती है। ऐसी दशामें दुम न रहनेके कारण कुत्ता दुमकटा कहलाता है। पर मैं दुमकटोंकी या कटी दुमकी बात यहाँ नहीं कह रहा हूँ। उसकी बात फिर कभी कहूँगा क्योंकि इस शब्दमें आजके युगका बहुत बड़ा सत्य पनप रहा है और मुझे पूरा विश्वास है कि लोगोंका यही हाल रहा तो आगे चलकर हिन्दी साहित्य एक और मुहावरेसे विभूषित हो जायेगा। फिर लोग टटोलने लगें और कुत्तेकी दुमको अपनी ही दुम समझने लगें तो बेशक समझें, समझते रहें।

■ ■ ■